जुलाई–सितम्बर 1994 वर्ष 26 अंक 3

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

हीलियम अतितरलता का उदाहरण – हीलियम फुहारा

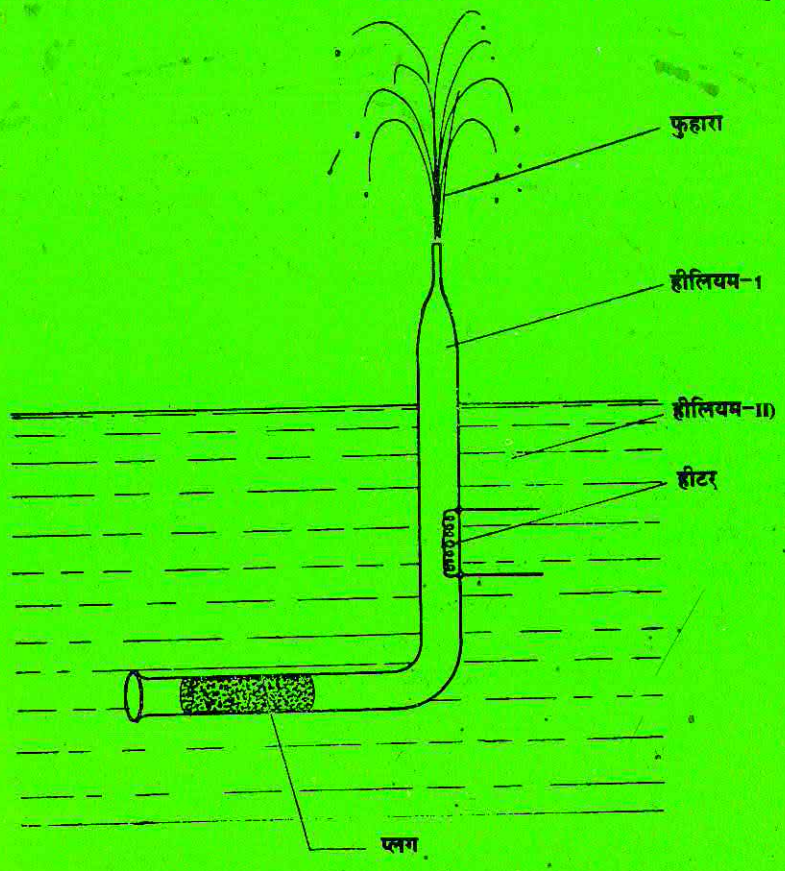

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार प्रसार हेतु परिषद नियमित रुप से त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

परिषद की सदस्यता एवं "वैज्ञानिक" पत्रिका का शुल्क इस प्रकार है।

	परिषद सदस्यता (रुपए में)			वैज्ञानिक शुल्क (रुपए में)	
	एक वर्ष	आजीवन	प्रवेश शुल्क	एक वर्ष	तीन वर्ष
व्यक्तिगत	15	100	1	15	40
संस्थागत	25	250	1	25	70

- "वैज्ञानिक" विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा।
- वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को 'वैज्ञानिक' निःशुल्क भेजी जाती है।
- सभी शुल्क हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के नाम से डिमांड ड्राफ्ट (बम्बई) अथवा भारतीय पोस्टल आर्डर द्वारा ही भेजें । कृपया बम्बई से बाहर के चैक व मनीऑर्डर द्वारा शुल्क न भेजें।
- कृपया शुल्क के साथ अपना निजी विवरण इस पत्रिका में दिए गए आवेदन पत्र के प्रारूप के अनुसार भेजें।

'वैज्ञानिक' में विज्ञापन

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पेत्रिकाओं में "वैज्ञानिक" अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सेमी. x 21 सेमी. है।

विज्ञापन की दरें		एक प्रति के लिए
अंतिम आवरण	:	रु. 2,500/–
दूसरा / तीसरा आवरण (अंदर)	:	रु. 2,000/–
पूरा पृष्ठ	:	रु. 1,500/–
आधा पृष्ठ	:	रु. 800/–

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता– 1995

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) निम्नलिखित पते पर भेजें। चित्रों को सफेद कागज पर काली रोशनाई से बनाएं और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

पुरस्कार : प्रथम रु. 1500/–, द्वितीय रु. 1000/–, तृतीय रु. 500/–

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिंदी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो विशेष पुरस्कार — प्रत्येक रु. 300/– के दिये जायेंगे। अत: अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि: 30 सितम्बर 1995

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होगी। "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

डॉ. जगदीश चन्द्र मोंगा, सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, लेसर एवं प्लाज्मा प्रौद्योगिकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे, बंबई – 400 085.

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 26 अंक 3
जुलाई–सितम्बर 1994

व्यवस्थापन मंडल

डॉ. अशोक कुमार सूरी
डॉ. जगदीश चन्द्र मोंगा
श्री. घनश्याम दास मित्तल
श्री इंद्र कुमार शर्मा
श्री. कुलवंत सिंह

संपादन मंडल

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
श्री. हरिओम मित्तल
डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला
डॉ. दुर्गा प्रसाद पांडेय
श्री. रामनाथ जिन्दल

शुल्क

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	25 रु.	15 रु.
तीन वर्ष	70 रु.	40 रु.

विदेश में
(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	45 रु.	35 रु.
तीन वर्ष	125 रु.	95 रु.

शुल्क भेजने का पता :
श्री. जी. डी. मित्तल
कोषाध्यक्ष, हि. वि. सा. प.
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बम्बई – 400 085

पृष्ठ संख्या

संपादकीय 3

लेख

1. कार्बन के बृहत् गोलक-फुल्लरीन 5
   – डॉ. (श्रीमती) वीणा सागर
2. खाद्य पदार्थों का परिरक्षण 8
   – राम नरेश शर्मा
3. करकस तेल – डीजल का एक विकल्प 14
   – राकेश कुमार पाण्डेय तथा
   डॉ. सुबोध कुमार दत्त
4. लुग्दी एवं कागज उद्योग द्वारा वायु प्रदूषण एवं रसायन अभियांत्रिकी 18
   – डॉ. आर. एन. शुक्ला
5. इयोसिनोफिल और इयोसिनोफिलिया 25
   – डॉ. रमेश सोमवंशी
6. भारी धातुओं की विषाक्तता 33
   – डॉ. दिनेश मणि

टिप्पणियां

1. कैसा होता है प्रकृति में संप्रेषण 36
   – कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी
2. क्या भौतिक विज्ञान भी आत्मा और ईश्वर की सत्ता को मानेगा ? 38
   – विवेक भूषण दर्शनाचार्य
3. जीवन का पूर्व प्रारूप (को–एसरवेट) 40
   – ओ. पी. खण्डेलवाल
4. गुणों में भी बेजोड़ आम 42
   – श्लोक प्रसाद सिंह
5. गैसों में आयन युगल बनाने के लिए आवश्यक ऊर्जा 43
   – डॉ. विजय कुमार भार्गव

- 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हि. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित है।
- 'वैज्ञानिक' एवं हि. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय बम्बई के न्यायालय में ही होगा।

कार्यालय :
'वैज्ञानिक' हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल काम्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
बम्बई – 400 085

'वैज्ञानिक' का शुल्क

पाठको से अनुरोध है कि यदि उनका 'वैज्ञानिक' का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर इसका नवीनीकरण करा लें। यदि सम्भव हो तो आजीवन सदस्य बन जाएं।

संपादक

बाल विज्ञान

1. अंक-प्रदेश की समस्या — 45
   — गोविंद प्रसाद शर्मा
2. क्या रस्सी को इतना खींचा जा सकता है? — 52
   — श्याम लाल धीमान
3. क्या धातुओं की विशिष्ट ऊष्मा स्थिर होती है? — 53
   — श्याम लाल धीमान

विज्ञान समाचार

- भा. प. अ. केन्द्र से — 54
- अन्य — 55

विज्ञान कविता

विज्ञान कविता — 57

संकलन

पिछले अंकों की अनुक्रमणिका — 58

कुछ फूल कुछ कांटे — 63

सदस्यता आवेदन पत्र (प्रारूप)

अध्यक्ष,
हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई 400 085.

प्रिय महोदय,
मैं, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद (भापअ केन्द्र, बम्बई) का आजीवन/ साधारण सदस्य बनने का इच्छुक हूं। मेरा निजी विवरण निम्नलिखित है।मैं सदस्यता शुल्क * साथ भेजा रहा हूं। कृपया मुझे परिषद का आजीवन / साधारण सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम : ______ आयु : ______
पता–कार्यालय : ______ पता–निवास : ______
व्यवसाय : ______
हिन्दी की पात्रता (Qualification) : ______ प्रवीणता (Specialisation) : ______
विशेष रुचि : ______ हस्ताक्षर : ______
अन्य विवरण : ______ दिनांक : ______

* शुल्क हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के नाम डिमांड ड्राफ्ट (बम्बई) अथवा भारतीय पोस्टल आर्डर द्वारा ही भेजें।

संपादकीय

प्रगत प्रौद्योगिकी हेतु प्रशिक्षण आवश्यक

कंप्यूटर विज्ञान आज के संदर्भ में सबसे अधिक चर्चित एवं लोकप्रिय प्रौद्योगिकी है इसमें कोई संदेह नहीं है। परंतु यदि यह कहा जाय कि इससे इष्टतम परिणाम प्राप्त न होने के पीछे प्रयुक्ता की व्यापक अरुचि है तो अतिशयोक्ति न होगी। यह न केवल इसी क्षेत्र की बिडंबना है बल्कि आज लगभग सभी आधुनिक एवं प्रगत तकनीकियों की कहानी है। इसके कुछ मौलिक कारण है जिनका संबंध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राष्ट्र के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक पहलुओं के साथ साथ यथावश्यक तकनीकी प्रशिक्षण में कमी, प्रणाली विकास की मूल संकल्पना के प्रति अज्ञानता एवं मानव व्यवहार से है।

प्रौद्योगिकी उदार नीति के अंतर्गत आज भारत में कई नयी नयी तकनीकों को लाने एवं स्थापित करने पर जोर दिया जा रहा है। इसके बांछित परिणाम तभी संभव हो सकेंगे जब उनके लिए एक सही सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण तैयार किया जाय। सांस्कृतिक परिवेश यह निर्धारित करता है कि हमारी राष्ट्रीय आवश्यकताएं क्या है? उदाहरणार्थ यदि हमारी मूलभूत ताकत कृषि के क्षेत्र में है तो नयी तकनीकों के चुनाव में इस क्षेत्र की प्रमुखता अत्यन्त आवश्यक है। परंपरागत शिल्प एवं क्षमताओं का आदर तथा उन्हें अद्यतन प्रौद्योगिकी विकास का लाभ देते हुए अधिक फलोत्पादक (दक्ष) व आर्थिक दृष्टि से व्यवहार्य बनाना राष्ट्र के हित में होगा। किसी भी प्रौद्योगिकी को ग्रहण करने और अपनाने में सामाजिक पहलुओं की भूमिका अहम है। यदि राष्ट्र की आर्थिक परिस्थिति मजबूत न हो तो सांस्कृतिक या सामाजिक तौर पर भी आवश्यक एवं ग्राह्य होने पर अमुक प्रौद्योगिकी नही अपनायी जा सकती है।

नयी उच्चस्तरीय प्रौद्योगिकी के आयात से पूर्व सभी पहलुओं पर व्यापक रूप से विचार आवश्यक है अन्यथा वह हमारे लिए एक पंगु या बीमार इकाई बन सकती है। ऐसा अक्सर देखने में आया है कि आधुनिकतम यंत्र/मशीन खरीद लेने के बावजूद कभी कभी उत्पादन और उत्पाद की गुणता में कोई परिवर्तन नही हो पाता है। इसका एक कारण तो यह भी हो सकता है कि हम उस तकनीक को अपनाने के लिए तैयार ही नहीं हैं या हमें उसके सही उपयोग की जानकारी नही है। प्रत्येक मशीन या तकनीक को सही रूप से कार्यरत करने के लिए उसकी कुछ मौलिक आवश्यकताएं होती है। इनमें समुचित प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) एवं औद्योगिक अवरचना (संपादकीय, "वैज्ञानिक", अप्रैल-जून 1992), मानव संसाधन, रखरखाव के कार्य सम्मिलित है।

नयी एवं पुरानी प्रौद्योगिकियों के बीच की आवश्यक कड़ी है – प्रशिक्षण। इसके दौरान प्रणाली विकास की मूल संकल्पना को समझना परमावश्यक है। तभी प्रयुक्ता उसका सही एवं अनुकूलतम उपयोग कर पाएगा। अज्ञानता प्रौद्योगिकी को समाप्ति की ओर अग्रसर करती है। प्रशिक्षण कार्य विभिन्न स्तर पर होने चाहिए। अधिकांशतः यह समझ लिया जाता है कि प्रबंधक को जानकारी / प्रशिक्षण दे दिया गया तो कार्य पूर्ण हो गया है। वस्तुतः यह सबसे बड़ी भूल है क्योंकि कार्य संपन्न करने वाले कारीगरों / शिल्पी, वैज्ञानिकों, इंजिनियरों की व्यवहारिक समस्याएं अलग होती हैं। उन्हें उन नाजुक स्थितियों मे निर्णय लेने होते हैं जब प्रबंधक महोदय कार्यस्थल पर उपस्थित ही नही होते हैं। अतः प्रशिक्षण कार्यक्रम में इन लोगों की उपेक्षा नही की जा सकती है। चूंकि प्रौद्योगिकी विकास एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है, अतः उस के अनुसार प्रशिक्षण कार्यक्रम भी संशोधित किए जाते रहने चाहिए। यहीं पर मानव व्यवहार एवं भावनाओं को भी प्रौद्योगिकी विकास के परिप्रेक्ष्य में पूर्णतः समझना होगा। तथा एक नियोजित सहक्रिया अपनानी होगी।

आज सूचना तकनीक का क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि उससे किसी भी परियोजना को तैयार करने, उसे सफल बनाने के लिए नये नये साधन। तौर तरीके हो गए है। परंतु उनका लाभ तभी हो पाएगा जब प्रणाली पेशेवर (प्रोफेशनल) एवं परियोजना तैयार करने वालों के बीच सही ताल मेल हो। प्रणाली पेशेवर उपलब्ध नये साधनों एवं तकनीकों को कार्य रूप देने में निपुण होते हैं। अतः उन्हें यह समझाना आवश्यक है कि अमुक परियोजना से क्या अपेक्षाएं हैं। परंतु उन्हें यह बताना कि इसका प्रयोग कहां होगा, योजना की गोपनीयता को ध्यान में रखते हुए, कदापि आवश्यक नही है। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि परियोजना को कार्यरूप देने वाले प्रबंधकों / वैज्ञानिकों / इंजीनियरों में प्रणाली पेशेवर द्वारा तैयार किए गए ब्लू प्रिंट को समझ पाने की क्षमता होनी चाहिए। तभी यह सुनिश्चित हो पाएगा कि प्रणाली पेशेवर ने हमारी आवश्यकता को पूर्णत ध्यान में रखा है। किसी भी परियोजना को जल्दी में लागू करने के ध्येय से पेशेवर पर पूर्ण (अंध) विश्वास कर, उसे सौप देने की प्रवृति परियोजना के लिए हानिकारक हो सकती है।

पिछले 10-15 वर्षों में कई नये यंत्र / औजार / प्रणालियों का विकास हुआ है जिनके द्वारा प्रगत प्रौद्योगिकियों के बारे में सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है और फलस्वरूप चल रही वर्तमान प्रणालियों में अपेक्षित सुधार भी लाया जा सकता है। परंतु इसकी प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करेगी कि प्रयुक्ता ने अमुक प्रणाली की संकल्पना को कितना समझा है तथा उसे कितने लगाव से किया है। यहां पर यह भी उल्लेखनीय है कि तकनीक अथवा यंत्र/ मशीन को खरीद लेने या प्रयोगशाला में ला देने मात्र से कोई अभीष्ट कार्य पूरा नही हो जाता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात उससे कार्य स्तर पर नाता जोडने की और उनके प्रति जिम्मेदारी समझने की है। साथ ही उसके सही एवं अभीष्ट उपयोग के लिए दृढ निश्चय से प्रयत्नशील होने की। परंतु दुर्भाग्य यह है कि यदा कदा कीमती तकनीक या मशीनों का खरीदा जाना एक व्यक्तिगत शान / प्रसिद्धि की नियत से प्रेरित रहता है और वह एक प्रदर्श मात्र बन कर रह जाता है।

किसी भी तकनीक मशीन के सही उपयोग के लिए पूर्ण रूप से प्रशिक्षित वैज्ञानिक / इंजीनियर तथा उनके सहायक होने आवश्यक है। यंत्रों के रखरखावे का समुचित प्रावधान उतना ही आवश्यक है जितना कि उन्हें खरीदा जाना। आज अधिकांश प्रगत एवं प्रौढ किस्म के यंत्र तथा मशीन आयात किए जाने के कुछ समय बाद से प्रयुक्त नही किये जा पा रहे हैं क्योंकि उनका कोई एक घटक या तो खराब हो गया है जिसे आसानी से प्राप्त नही किया जा सकता है (आर्थिक कारण या अनुपलब्धता) अथवा उसको ठीक करने के लिए कोई पूर्ण रूप से प्रशिक्षित इंजीनियर या मैकेनिक नही है। आज की परिस्थितियों में इस पक्ष को मजबूत करने की अत्यन्त आवश्यकता है। किसी भी उच्च प्रौद्योगिकी में निवेश करते समय न केवल उसकी वर्तमान लागत पर ध्यान दिया जाना चाहिए बल्कि प्रशिक्षण एवं रखरखाव संबंधित व्यय को भी पूर्ण रूप से उसमें सम्मिलित किया जाना आवश्यक है। अन्यथा अज्ञानता की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ सकती है।

वर्ष 1994 के प्रस्तुत जुलाई-सितम्बर अंक में अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1993) में पुरस्कृत शेष लेखों को दिया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य लेखों के साथ बाल विज्ञान, विज्ञान कविता, विज्ञान समाचार संबंधित सामग्री भी दी गयी है। पाठकों से अंक विशेष के बारे में प्राप्त होने वाली प्रतिक्रियाओं में कमी वैज्ञानिक साहित्य निर्माण की दिशा में नकारात्मक भूमिका की परिचायक तो है ही साथ ही इस कार्य में प्रयत्नशील लेखकों / संपादकों के उत्साह को कम करती है। पत्रिका को उच्चस्तरीय बनाने में पाठकों की सक्रिय भागीदारी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः आप अपने इस सहयोग से हमें वंचित न रखें और अपनी प्रतिक्रियाएं हमें अवश्यक भेजें।

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1993) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

कार्बन के बृहत् गोलक - फुल्लरीन

डॉ. (श्रीमती) वीणा सागर
ईंधन रसायनिकी प्रभाग,
भा. प. अ. केन्द्र, बंबई - 400 085.

कार्बन के गेंदनुमा यौगिकों की आजकल काफी चर्चा हो रही हैं । इनके विशिष्ट गुणों के कारण इनका अध्ययन कई दृष्टिकोणों से किया जा रहा है। प्रस्तुत लेख में इन यौगिकों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

कुछ समय से ब्रह्मांड में कार्बन की स्थिति को सही रूप से समझने के लिए काफी रुचि निर्माण हो गयी है। कुछ वर्ष पहले यह पाया गया कि आंतरतारकीय (इंटर स्टेलर) क्षेत्र के अवशोषण वर्णक्रम की विशेषताएँ कार्बन के बृहत् अणुओं से मिलती जुलती हैं । इन अणुओं को प्रयोगशाला में निर्माण करने के प्रयास में क्रोटो, रिचार्ड स्माइली तथा उनके साथियों ने ग्रेफाईट स्फटिकों पर उच्च-ऊर्जा लेसर की प्रक्रिया से उत्पादित कार्बन वाष्प के द्रव्यमान वर्णक्रम (मास स्पेक्ट्रम) का अध्ययन किया । इसमें कार्बन के बहुत से सम संख्या वाले गुच्छे (गोलक) पाये गये । इनमें C_{60} (कार्बन के 60 परमाणुओं से बना गोलक) की मात्रा अधिकतम पायी गयी तथा उसकी स्थिरता विशेष रूप से उल्लेखनीय पायी गयी । C_{60} का आकार फुटबॉल के जैसा था जहाँ फुटबाल के रिक्त ढाँचे के (20 षट्कोण तथा 12 पंचकोण) हर शीर्ष पर कार्बन का एक परमाणु स्थित था (चित्र - 1अ) । चूँकि इस तरह की संरचना वाले भूमितीय गुंबज का निर्माण सुप्रसिद्ध अमेरिकन वास्तुशिल्पि बक मिन्स्टर फुल्लर ने किया था, इसी कारण से C_{60} का नामकरण 'बकमिन्स्टर फुल्लरीन' किया गया । आम तौर पर C_{60} 'बकीबॉल' के नाम से प्रसिद्ध है ।

C_{60} के साथ ग्रेफाईट वाष्प में पाये गये अन्य गोलकों में कार्बन के 70 परमाणुओं से बना C_{70} महत्त्वपूर्ण गोलक पाया गया (चित्र–1ब) जिसका आकार रग्बी बाल जैसा था । इन सब गोलकों में सबसे बडा गोलक C_{540} (कार्बन के 540 परमाणु) पाया गया (चित्र 2) । कार्बन के इन सारे गोलकों के समुदाय को 'फुल्लरीन' नाम दिया गया । ये फुल्लरीन शुद्ध कार्बन की तीसरी प्रारूप अवस्था है - पहली दो क्रमशः ग्रेफाइट एवं हीरा हैं। हीरा एवं ग्रेफाइट की संरचना चित्र -3 में दी है। हीरे में दो कार्बन के परमाणुओं के बीच की दूरी 1.54 A^0 होती है, जब कि ग्रेफाइट में यह अन्तर 1.39 A^0 होता है। C_{60} में कार्बन - कार्बन बंध लंबाई लगभग 1.40 A^0 एवं 1.43 A^0 होती है। हीरा एक

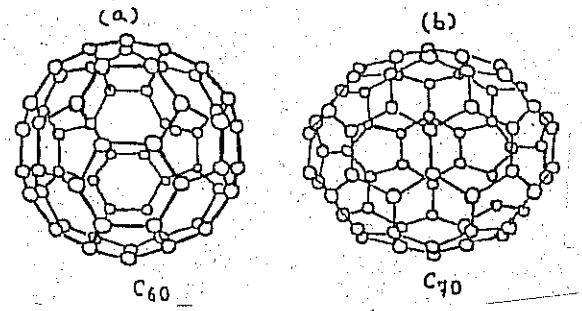

चित्र–1 C_{60} एवं C_{70} की संरचना

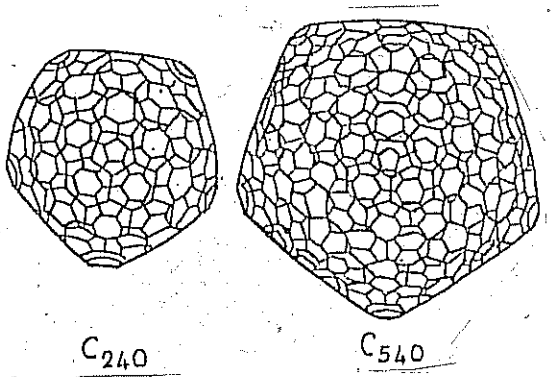

चित्र–2 कार्बन के बृहत् गोलक C_{240} एवं C_{540}

पूर्ण विद्युत प्रतिरोधक होता है जबकि ग्रेफाइट एक चालक है । C_{60} भी एक प्रतिरोधक है। C_{60} के अन्य रासायनिक गुणधर्म हीरे एवं ग्रेफाइट के रासायनिक गुणधर्मों के बीच वाले होते हैं।

1990 के अन्त में C_{60} तथा C_{70} को अधिक मात्रा में बनाने के लिए क्राशमर एवं अन्य सहकर्मियोंने एक साधारण प्रयोगशाला विधि ढूँढ निकाली । इस विधि में ग्रेफाइट इलेक्ट्रोड का उच्च विद्युत धारा से हीलियम के वातावरणमें वाष्पीकरण किया जाता है । आर्क पर जमा हुए कालिख को कार्बनिक घोलक टोलविन में घुलाया जाता है। घोल से अलग किये गये ठोस पदार्थ में C_{60} के साथ-साथ C_{70} की भी थोडी मात्रा पायी जाती है। कौलम क्रोमेटोग्राफी द्वारा C_{60} एवं C_{70} को अलग किया जाता है। C_{60} के घोल का रंग मैजेंटा होता है जबकि C_{70} के घोल का रंग मदिरा-रक्त (वाइन रैड) होता है। बेंजीन के लौ द्वारा प्राप्त कालिख (चित्र-4) में भी C_{60} तथा C_{70} पाये जाते हैं। केरोसीन या अन्य एलिफेटिक हाइड्रोकार्बनों द्वारा प्राप्त कालिख में C_{60} तथा C_{70} नहीं पाये जाते। एक्स रे अध्ययन से C_{60} की उच्च समदर्शिता का पता चलता है। C_{60} के आंतरिक ढाँचे में दो गोलकों के बीच 9.10 A^0 का अन्तर पाया गया तथा यह भी पता चला कि रिक्त गोलक का व्यास 7A^0 है। C_{60} एक अभिक्रियाशील (रिएक्टिव) अणु है एवं विभिन्न प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रियाओं में भाग लेता है। C_{60} अवकृत होकर $C_{60}H_{18}$ एवं $C_{60}H_{36}$ बनता है। मिथिलेशन करनेपर यह $C_{60}(CH_3)_6$ अणु बनता है। C_{60} के इस महत्त्वपूर्ण गुणधर्म का उपयोग करके अन्य रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा C_{60} के कई अन्य उत्पाद (derivatives) बनाये जाने लगे हैं।

आजकल C_{60} का एक महत्त्वपूर्ण पहलू सामने आया है। C_{60} रिक्त गोलक के बीच में लेन्थेनाइड्स, लोह एवं हीलियम का स्थापन किया गया है तथा कार्बन परमाणुओं की जगह बोरोन तथा नाइट्रोजन परमाणु को प्रतिस्थापित करने के प्रयास भी किये गये हैं। यह देखा गया कि नाइट्रोजन के परमाणु C_{60} के कार्बन परमाणुओं को प्रतिस्थापित करते हैं तथा C_{60} और C_{70} से जुड़ भी जाते हैं। तकनीकी दृष्टिकोणसे C_{60} के इलेक्ट्रॉनिक गुणधर्म

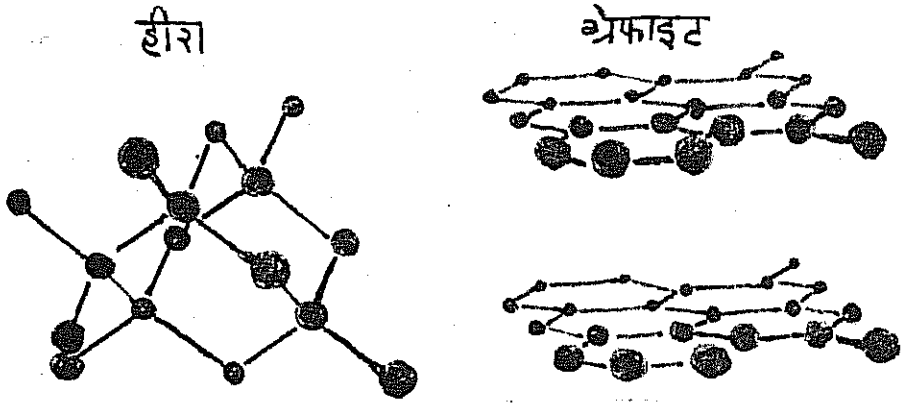

चित्र– 3 हीरा एवं ग्रेफाइट की संरचना

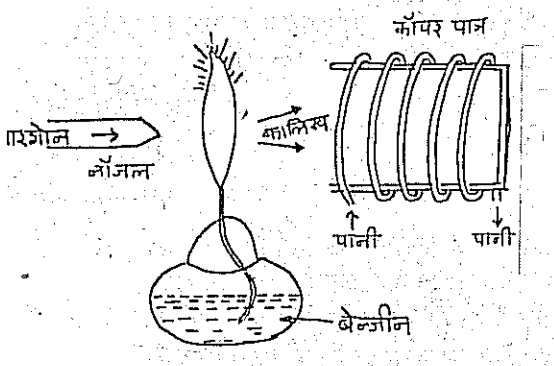

चित्र– 4 बेंजीन लौ से फुल्लरीन का निर्माण

में काफी रुचि दिखायी जा रही है। भिन्न भिन्न प्रकार के यौगिकों में C_{60} एक प्रतिरोधक, अर्धचालक, चालक तथा अतिचालकता के गुणधर्म दर्शाता है।

C_{60} के कई अणु मिलकर एक फेस सेन्टर्ड स्फटिक बनाते हैं। यह माना गया है कि यह स्फटिक रूप गैलियम आर्सेनाइड की तरह एक अर्धचालक का काम कर सकता है । इन दोनों में एक फर्क यह है कि C_{60} के अणु अनियमित तथा पूर्णत: मुक्त रूप से प्रचक्रम, स्पिन, करते हैं जिससे इसके गुणधर्म अस्फटिकी सिलिकन से मिलते जुलते हैं। इस अस्फटिकी सिलिकन का उपयोग सस्ते सोलर सेल बनाने में किया जाता है। ऐसा अनुमान है कि निकट भविष्य में C_{60} से सोलर सेल बनाये जा सकते हैं। C_{60} की ऊपर बतायी विशेष प्रकार की अनियमितता के फलस्वरूप एक बिल्कुल ही नये प्रकार के अर्धचालक बनाये जाने की संभावना है।

1991 की शुरुआत में एटी एंड टी बेल लेबोरेटरीज में यह अनुसंधान किया गया कि C_{60} को पोटेशियम से डोप करके एक नये तरह के धात्विक फेज- एक बकाइड लवण का निर्माण किया जा सकता है। जब C_{60} में तीन पोटेशियम के परमाणु जुडते हैं, (K_3C_{60}) तब उसकी विद्युतीय चालकता अधिकतम हो जाती है। अगर और अधिक मात्रा में पोटेशियम जोडा जाता है तब वह प्रतिरोधक बन जाता है। आगे चलकर यह भी अनुसंधान किया गया कि K_3C_{60} को 18^0K तक ठंडा करने से वह अतिचालक में परिवर्तित होता है। जब पोटेशियम की जगह रुबिडियम जोड़ा गया तब 30^0K पर ही उसने अतिचालकता के गुणधर्म दर्शाये। रुबिडियम-थैलियम से डोप किये गये C_{60} में अतिचालकता के गुणधर्म 43^0k पर दिखाई दिये। इन त्रिमितीय अतिचालक पदार्थों का उत्पादन करके अतिचालक तार को व्यावहारिक स्तर पर प्रयोग में लाया जा सकता है।

मिनेसोटा विश्वविद्यालय में यह देखा गया कि गैलियम आर्सेनाइड जैसे स्फटिकों की सतह पर विशेष रूप से क्रमित (हाइली ऑर्डरड) C_{60} की फिल्म बनायी जा सकती है। यह फिल्म माइक्रोइलेक्ट्रॉनिकी निर्माण में उपयुक्त पायी गयी है। C_{60} के कई संयोजकों (कंप्लेक्सज) में धातुओं की अनुपस्थिति में लोह चुंबकीय गुणधर्म पाये गये हैं जो इनकी एक अद्वितीय विशेषता है। पूर्णत: फ्लोरिनेटेड बकीबॉल $C_{60}F_{60}$ (टेफ्लोन बॉल) का अधिक मात्रा में निर्माण लिसेस्टर तथा ससेक्स विश्वविद्यालय में किया गया है। यह पदार्थ शायद विश्व का सबसे अच्छा स्नेहक (लुब्रिकैंट) होगा।

संश्लेषक कार्बनिक रसायनिकी में C_{60} असीम संभावनाएँ प्रदान कर सकता है। उत्प्रेरक तथा धातुकार्बनिकी के क्षेत्र में इसका बृहत् उपयोग हो सकता है। C_{60} एवं C_{70} के अलावा अन्य फुल्लरीनों के गुणधर्म भी समान रूप से आकर्षक हैं। कई अन्य फुल्लरीन बनाये जा सकते हैं तथा उनके गुणधर्मों का अध्ययन किया जा सकता है।

यह देखा गया है कि ग्रेफाइट की कालिख का क्विनोलिन के साथ निष्कर्षण करने से उच्च फुल्लरीन जैसे C_{120}, C_{180}, C_{300} मिलते हैं। कार्बन के अन्य बृहत् गोलक जैसे C_{240} तथा C_{540} (चित्र–2) के अधिक मात्रा में पाये जाने की संभावना वास्तविक है।C_{240} के कोटर (केविटी) में एक C_{60} अणु को प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

स्पष्टत: भविष्य में फुल्लरीन अनुसंधान की अनेक संभावनाएँ हैं। फुल्लरीन रसायनिकी अनुसंधान का एक बिल्कुल ही नया क्षेत्र है जिससे विभिन्न क्षेत्रोंमें उपयोगी कई नये पदार्थ विकसित हो सकते हैं। ■■■

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1993) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

खाद्य पदार्थों का परिरक्षण

राम नरेश शर्मा
तकनीकी सेवाएं प्रभाग
भा. प. अ. केन्द्र, बंबई400 085

मनुष्य की मुख्य आवश्यकताओं में हवा और पानी के अतिरिक्त खाद्य यानि भोजन का ही स्थान है। जीवित रहने के लिए हमें समय - समय पर भोजन की एक निश्चित मात्रा का सेवन करना नितान्त आवश्यक है । हवा और पानी तो हमें सृष्टि में थोड़े ही प्रयास से उपलब्ध हो जाते हैं लेकिन भोजन की प्राप्ति के लिए हमें नाना प्रकार के कठिन प्रयास करने पड़ते हैं। हर कोई यह चाहता है कि उसे ताजे, स्वादिष्ट और निरापद खाद्य पदार्थ कम मूल्य से मिले और भविष्य में भी सतत मिलते रहें। प्रस्तुत लेख में खाद्य पदार्थों के परिरक्षण संबंधित पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

विज्ञान की प्रगति के साथ साथ लोगों के रहने का जीवन स्तर काफी ऊँचा उठ गया है। लोग अच्छे और ताजे खाद्य-पदार्थों की मांग सदैव करते रहे हैं जो खाद्य परिरक्षण के आधुनिक तरीकों से ही संभव है। अध्ययन से पता चला है कि भारत के पश्चिमी क्षेत्र बम्बई से भारत के पूर्वी क्षेत्र डिब्रूगढ़ (आसाम) तक परिवहन का समय लगभग तीस दिन लग जाता है जिससे खाद्य पदार्थ लगभग 60 प्रतिशत नष्ट हो जाते हैं। अत: यह जरूरी हो गया है कि खाद्य पदार्थों को किस तरह से ज्यादा से ज्यादा दिनों तक बिना क्षतिग्रस्त हुए सुरक्षित रखा जा सके ।

खाद्यपदार्थों के परिरक्षण के उद्देश्य :

खाद्य-पदार्थों के परिरक्षण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1) इनकी आयु एवं उपयोगिता को बढ़ाना ।
2) इनके मूल रूप, रंग, स्वाद, गंध, विटामिन, पोषक मान, व वजन को बनाए रखना ।
3) विकिरण व रसायनिक प्रभावों से दूर रखना।
4) किण्वक (एन्जाइम्स), प्रकिण्व (यीस्ट), शाकाणव (बैक्टेरिया), संचक (मोल्ड) व अन्य जीवों के प्रभाव से रक्षा करना ।
5) टूट - फूट, खरोंच व सड़ने - गलने से बचाना।
6) प्रजनन शक्ति को नियंत्रित करना।
7) संग्रहण, अनुरक्षण, परिवहन व वितरण में न्यूनतम श्रम व मुद्रा खर्च करना।

परिरक्षण के उपाय व सिद्धान्त :

खाद्य - पदार्थों का परिरक्षण साधारणतया दो प्रकार से किया जाता है :-

अ) खाद्य - पदार्थों को दूषक जीवाणुओं से दूर रखकर या
ब) इन जीवाणुओं की क्रियाशीलता को वांछनीय सीमा तक कम करने पर।

खाद्य पदार्थों के परिरक्षण तकनीशियन एवं प्रशीतन अभियंता गण लगभग तीन दशकों से खाद्य एवं सूक्ष्म जीवाणुओं के अध्ययन द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भोजन (खाद्य पदार्थ) को खराब करनेवाले मूलत: आधार सूक्ष्म जीवाणु ही हैं जो अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति पाकर बढ़ते और घटते हैं।

खाद्य पदार्थ परिरक्षण का सिद्धान्त यही है कि किसी भी प्रक्रिया द्वारा किण्वक व सूक्ष्म जीवाणुओं के विकास व क्रियाशीलता की प्रतिकूल परिस्थितियों को उत्पन्न कर उसे वांछनीय समय तक बरकरार रखा जाय।

खाद्य पदार्थ परिरक्षण की कुछ विधियों का विवरण नीचे दिया गया है जो लगभग इसी सिद्धान्त पर आधारित हैं ।

1) तापन विधि

ताप साधारणतया सभी तरह के खाद्य प्रदूषण कर्ता जैसे किण्वक, शाकाणव, प्रकिण्व व संचक आदि को नष्ट कर देता है। इस विधि से कुछ ही दिनों तक खाद्यों को सुरक्षित रक्षा जा सकता है ।

2) निर्जलीकरण विधि

खाद्यों को पूर्णत: सुखाकर किण्वक व सूक्ष्म जीवाणुवों को अक्रिय बनाया जा सकता है। वनस्पतियों/सब्जियों को सूर्य की किरणों द्वारा सुखाकर सुरक्षित रखने का काफी प्रचलन है। सूर्य की पराबैंगनी किरणें किण्वक व सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर देती हैं।

खाद्यों को सुरक्षित रखने की यह विधि काफी सस्ती तो है लेकिन फिर भी इस विधि का उपयोग कम किया जाता है क्योंकि इस विधि से खाद्य का स्वाद बना नही रहता ।

3) रसायन विधि

नमक और चीनी की उपस्थिति में बहुत से जीवाणु पनप नही सकते। अत: नमक और चीनी को खाद्यों की सुरक्षा के लिए उपयोग में लाया जाता है। वैसे भी नमक और चीनी जीवन के लिए अत्यावश्यक है। नमक या चीनी मिलाकर पकाया गया भोजन इनसे रहित भोजनों की तुलना में ज्यादा समय तक चल सकता है। अचार में नमक का आधिक्य सूक्ष्म-जीवाणुओं को विकसित नहीं होने देता है और अचार काफी समय तक ठीक रहता है।सिरके का उपयोग भी विस्तृत रूप में किया जाता है क्यों कि इसके अम्लीय तत्व प्रदूषक तत्वों के विकास में बाधा डालते हैं ।

4) विकीर्णन विधि

त्वरित विद्युद्‌णु (इलेक्ट्रॉन) क्ष - किरणें एवं रेडियो सक्रिय समस्थानिक जैसे कोबाल्ट - 60 से उत्सर्जित गामा, बीटा किरणें भी सभी जैव वस्तुओं को प्रभावित करती हैं। खाद्य पदार्थ के किस्म व प्रकार के अनुसार एवं वांछित समयानुसार विकिरण की भिन्न - भिन्न मात्रा खाद्यों को दी जाती है। आलू और प्याज को 0.06 से 0.09 किलो ग्रे के बीच विकीर्णित करने से उन्हे प्रदूषकों से पूर्णत: मुक्त किया जा सकता है और इन्हें 15^0 से. पर भी रखा जा सकता है। इसी तरह चावल, गेहूँ एवं गेहूँ के उत्पादों को 0.025 से 0.075 किलो ग्रे के बीच विकीर्णित करने से सभी प्रकार के किटाणु नष्ट हो जाते हैं और इन उत्पादों को फिर वाताप्रवेश बंदस्थल (एयर टाइट/सील्ड स्पेस) में संग्रह कर कई वर्षो तक सुरक्षित रखा जा सकता है। खाद्य मे व्याप्त विषकारी जीवाणु (जैसे सैल्मोनेला या कैम्पिलोबैक्टर व्याधिजनक जीवाणु) जो हिमीकृत समुद्री खाद्य (मछली) में भी विद्यमान रहते हैं, विकिरण की 2 से 6 किलो ग्रे मात्रा द्वारा पूर्णत: नष्ट किया जा सकता है। इन जीवाणुओ को अन्य किसी भी विधि द्वारा नष्ट करना असंभव है। मसालों को 10 किलो ग्रे की मात्रा द्वारा पूर्णत: प्रदूषण रहित किया जा सकता है।

कुछ खाद्यों को सुरक्षित रखने की अवधि नीचे की तालिका-1 में दी गई है :-

तालिका - 1

खाद्य सामग्री	विकिरण की मात्रा (कि. रे.)	सुरक्षित अवधि (सप्ताह)
प्याज	6 - 9	11 - 23
आलू	6 - 15	13 - 28
अनाज	20 - 75	48 से अधिक
चावल	15 - 25	50 से अधिक
गेहूँ	15 – 20	40 से अधिक
फल	25 – 40	15–20
गेहूँ उत्पाद	50	8
मछली	100 - 250	3 - 4
मांस	100 - 250	16 - 26
सैल्मोन (सैमन)	250 - 400	3.5
केला	500	2 - 14
काप्सिटिज	500	1 - 8
मसाले	500- 1000	50 से अधिक

खाद्य परिरक्षण की यह विधि बहुत प्रभावी व आधुनिक है पर अभीतक पूर्ण विकसित नहीं हुई है। लगभग 36 देशों, मुख्यत: अमेरिका, चीन, जापान, कनाडा, बेल्जियम, फ्रांस, हॉलैंड, अफ्रिका, नैदरलैंड, रूस, ऑस्ट्रेलिया एवं विश्व स्वास्थ्य

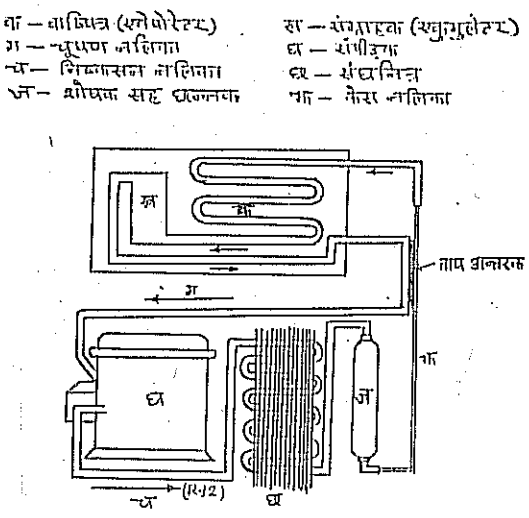

चित्र– 1 घरेलू प्रशीतक (एकलन प्रक्रम, वाष्प संपीडन प्रशीतक)

संगठन, खाद्य एवं कृषि संगठन तथा अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा अभिकरण 10 किलो ग्रे तक विकीर्णित खाद्य के लिए सहमत हैं लेकिन इसके दुष्परिणामों के ड़र से सशंकित उपभोक्ता निर्णय लेने में असमर्थ हैं। विकिरण के दुष्परिणाम अनुवांशिक क्षति के रूप मे उभरकर सामने आते हैं यदि विकिरण की मात्रा सीमा पार कर जाय। अधिक मात्रा से तो खाद्य की गंध इत्यादि में भी कुछ परिवर्तन हो जाता है लेकिन विकिरण की अल्पमात्रा से खाद्य की पौष्टिकता एवं गुणवत्ता पर कोई खास असर नहीं पड़ता है।

5) हिमीकरण विधि

निम्न तापमान किण्वक व अन्य सूक्ष्म जीवों के विकास एवं सक्रियशीलता के लिए प्रतिकूल है। इसी तथ्य को आधार मानकर इस विधि द्वारा खाद्य परिरक्षण किया जाता है। यह विधि लगभग सभी तरह के खाद्यों के लिए उपयोगी है। यह सबसे आधुनिक और सर्वसाधारण विधि है । इस विधि की सबसे अतुलनीय विशेषता यह है कि इससे खाद्य का मूल स्वाद सतत विद्यमान रहता है. और यही कारण है कि यह सर्वत्र विख्यात हो गयी है। यह घरेलू स्तर पर भी उपलब्ध है।

प्रशीतन तकनीकी द्वारा करीब तीन दशकों से खाद्य के किस्म एवं प्रकार के अनुसार उन्हें इच्छानुसार सुरक्षित रखने में सराहनीय प्रयास हुआ है। कम समय तक रखे जानेवाले खाद्यों को श्यानांक (फ्रीजिंग बिन्दु) से ऊपर ही रखा जाता है लेकिन ज्यादा दिन तक रखे जानेवाले खाद्यों को श्यानांक से नीचे रखा जाता है। विभिन्न खाद्यों को सुरक्षित रखने का तापमान परिसर -12 से -25^0 सें. के बीच ही है जो तालिका -2 से स्पष्ट है।

तालिका - 2

खाद्य सामग्री	उच्चतम तापमान (^{0}सें.)	सुरक्षित अवधि (महीने)
सब्जियाँ, (पत्तियोंवाली नही)	—17.8	12 या उससे अधिक
फल	—12.2	4
मांस अ) सूअर का मांस ब) गोमांस स) मेमने का मांस	 —17.8 -12.2 -17.8 -12.2	 6 3 12 या उससे अधिक 4
मछली	-17.8	4
मुर्गियाँ (पोल्ट्री)	— 23.4 — 17.8 – 12.2	12 10 4
दुग्ध उत्पादन मक्खन	— 17.8 – 12.2	12 3

हिमीकरण द्वारा खाद्य परिरक्षण के लिए उपयुक्त उपकरण एवं संयंत्र

i) शीत संग्राहागार

बहुत से खाद्यों को हिमांक (श्यानांक) से ऊपर ही रखा जाता है लेकिन रखने का समय हिमीकृत समय से कम होता है और ज्यादा से ज्यादा 15

दिन ही रहता है। ऐसी दशा में उत्पाद को शीत संग्राहागार में रखा जाता है। रखने का समय खाद्य के किस्म और उसकी अवस्था पर निर्भर करता है। ताजे टमाटर ज्यादा से ज्यादा 10 दिनों तक रखे जा सकते हैं।

शीत संग्राहागार के अभिकल्पन में दो मुख्य बातों का ध्यान रखा जाता है - संग्रहण का तापक्रम और आर्द्रता !

ii) मिश्रित संग्राहागार

विभन्न प्रकार के खाद्यों के परिरक्षण के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इसकी सबसे बड़ी कमी यह है कि एक खाद्य की गंध दूसरे में जा सकती है।

iii) हिमीकृत संग्राहागार

इसमें खाद्यों को अधिक अवधि तक रखा जा सकता है यह आकार और तापमान परिसर को सापेक्षत: कम होने से ही शीत संग्राहागार से भिन्न है। इसमें रखे जानेवाले खाद्य सब्जियाँ, मांस, फल, मछली, पोल्ट्री, रोटी, मलाई, वर्फ और पके हुए अन्य भोजन आदि हैं।

फलों को उन्हें तैयार होने के ठीक पहले काटना चाहिये और उन्हें जितनी जल्दी संभव हो, जमा देना चाहिये; स्वाद बनाए रखने के लिए एवं इसे ज्यादा समय तक सुरक्षित रखने के लिए यह जरूरी है। फलों को काट लेने के तुरंत बाद धोकर शीघ्र ही - 20^0 सें नीचे जमा दिया जाता है। वनस्पतियों को काटकर, साफकर और धोकर 60 से 70^0 सें. तक गर्म पानी में विरंजन(ब्लीच) किया जाता है जिससे उसके साथ रहनेवाले किण्वक मर जाते हैं। फलों का विरंजन नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे फलों के स्वाद पर प्रभाव पड़ता है।वनस्पतियों (सब्जियों) एवं फलों को जमने का तापमान - 20^0 सें से कम ही रखा जाता है।

मांस और मछली को हिमीकरण के लिये फलों और वनस्पतियों की तरह कोई अग्र-विधायन नहीं करना पड़ता है।इन्हें धोने के बाद सीधे ही हिमीकृत संग्राहागार में रखकर हिमीकृत किया जाता है।

विभिन्न प्रकार के संग्राहागार हैं जिनका नाम उनके उपयोगिता के आधार पर रखा गया है। वाणिज्यिक हिमीकृत प्रकार के प्रशीतन यंत्र को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है।

क) रीच इन प्रशीतक (घ) बोतल शीतलक

ख) वाक इन शीतलक (ङ) गाढ् श्यान यंत्र (डीप फ्रीजर)

ग) प्रदर्शनी आवरण (च) चेस्ट फ्रीजर

iv) घरेलू प्रशीतक

यह यंत्र शीतलन सह हिमीकरण के काम में आता है। विगत तीन दशकों में इनके सुधार एवं विकास के लिए काफी लंबे कदम उठाये गये हैं। कम ऊर्जा खपत, कम आवाज, और इनके सुंदर आकर्षक रंग-रूप के लिए काफी सुधार किये गये हैं। वाताप्रवेश बंद यूनिट में चालक और संपीड़क दोनों को एक ही कक्ष में बंद कर दिया जाता है जिससे प्रशीति द्रव का स्राव नगन्य हो जाता है और आवाज भी निरपेक्षत: निम्नतर पहुँच जाती है। इन्हें 0.1 से 0.25 घनमीटर तक के क्षमता में बना लिया गया है। एक इसी प्रकार के घरेलू प्रशीतक की संहति को चित्र - 1 में दर्शाया गया है। यह वाष्प संपीड़न चक्र के सिद्धान्त पर आधारित है।

आजकल तो घरेलू प्रकार के विद्युज्जन्य लक्स प्रशीतक को भी विकसित कर लिया गया है जो यांत्रिक बाधाओं से बिल्कुल ही मुक्त है। घूमनेवाले अवयवों के न होने से यह पूर्णत: आवाज रहित है। इसका लाभ यह भी है कि ऊष्मीय भार कम होने से इसके कार्य निस्पादन गुणांक (C.O.P= R.E./W.D.) में कोई खास परिवर्तन नहीं होता है। तापन की किसी भी प्रक्रिया का उपयोग कर (जैसे गर्म जलवाष्प, धुम्रादि) एवं इन्हें नियंत्रित कर इसे वर्षों तक अलग - अलग तापमानों वाले वाष्पित्रों के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रशीतक की एक संहति चित्र –2(अ) में दर्शायी गयी है। ऊष्मीय भार में परिवर्तन के साथ कार्य निष्पादन गुणांक में परिवर्तन वाष्प संपीडन प्रशीतक की तुलना में चित्र - 2 (ब) में दर्शायी गयी है।

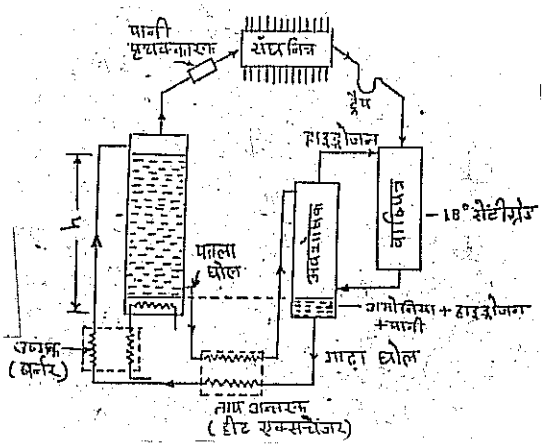

चित्र–2 (अ) घरेलू विद्युज्जन्य लक्स (यांत्रिक बाधाओं से मुक्त संहति

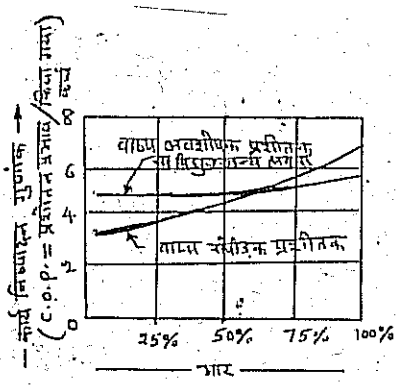

चित्र–2(ब) भार के साथ–साथ कार्य–निष्पादन गुणांक (C.O.P.)

v) प्रपात प्रशीतक

उपरो संपीड़क प्रकार के प्रशीतकों मे या संयुक्त संपीड़क प्रकार के प्रशीतकों में कुछ निश्चित सीमा तक ही तापक्रम नीचे लाया जा सकता है। अत: इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रपात प्रकार के प्रशीतक (कास्केड रेफ्रिजरेटर) का विकास किया गया है। उससे वांछित तापमान तक इच्छानुसार हिमीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार के एक द्विगुण प्रक्रम संहति को चित्र - 3 (अ) में दर्शाया गया है और उसके अलग - अलग कार्य चक्र को चित्र - 3(ब) मे दर्शाया गया है। इस संहति में दो अलग - अलग वाष्प संपीड़न प्रशीतक हैं जिसमें पहले प्रशीतक का वाष्पित्र दूसरे प्रशीतक के लिए संघनक का काम करता है।

आजकल तो तिगुण प्रक्रम वाले प्रपात प्रशीतकों को भी विकसित किया जा चुका है जिससे काफी निम्न तापमान तक पहुँचा जा सकता है। खाद्य - परिरक्षण के लिए द्विगुण प्रक्रम ही काफी है क्योंकि इससे - 80^0 सें. तक आसानी से तापमान मिल जाता है जबकि किसी भी तरह के खाद्य - पदार्थ के लिए - 60^0 सें. से निम्न तापक्रम की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है।

6) हिमीकरण शुष्कण विधि

वातावरण की ही हालत में खाद्य को जमाकर अधिक अवधि तक सुरक्षित रखने की यह आधुनिक स्वीकृत मानक विधि है। इस विधि के सिद्धान्त की जानकारी बहुत वर्षों से थी लेकिन इस विधि का वृहद्स्तर पर उपयोग द्वितीय विश्व युद्ध तक नहीं के बराबर था हालांकि इसका उपयोग पेनिसिलिन और रक्त-प्लाज्मा के शुष्कण के लिये किया जाता था। आजकल तो बहुत से देशों में खाद्य उद्योगों मे इसका उपयोग सफलता पूर्वक किया गया है और अब सभी प्रकार के भोजनों को श्यान - शुष्क करके सुरक्षित रखना संभव हो गया है।

(क) सिद्धान्त : इस विधि का आधारभूत सिद्धान्त भौतिकी के सरल नियम पर निर्भर है कि "अत्यधिक निर्वात में सिर्फ पानी ही ठोस या वाष्प की अवस्था में रह सकता है।"

वास्तव में इस विधि को "सब्लिमेशन द्वारा शुष्कण" से वर्णित किया जाता है।

(ख) विधियाँ : तीन विधियाँ जिनका हिमीकरण - शुष्कण में उपयोग किया जाता है उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

i) प्रारंभिक हिमीकरण

उत्पाद को तब तक जमाया जाता है जब तक उसमें कोई द्रव विद्यमान न रहे। खाद्य के रासायनिक संरचनानुसार श्यान तापमान विभिन्न

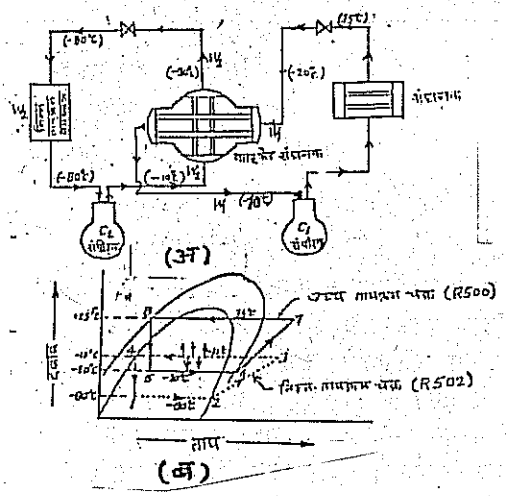

चित्र–3 प्रपात प्रशीतक संहति (द्विगुण प्रक्रम)

खाद्यान्नों के लिए विभिन्न होता है लेकिन पूर्णत: जमने की निश्चितता के लिए - 60^0 सें से नीचे जाने की आवश्यकता नहीं रहती है।

प्रारंभिक श्यान के लिए उपयुक्त यंत्र को इतना सक्षम तो अवश्य होना चाहिये कि खाद्य संभवतया शीघ्रातिशीघ्र जम जाय। इसके लिए द्विगुण प्रक्रम वाले प्रपात प्रशीतक का उपयोग वांछनीय है।

ii) शुष्कण

प्रारंभिक हिमीकृत खाद्य को शुष्क करने के लिये इसे उच्च निर्वातवाले कक्ष में लाया जाता है जहाँ बर्फ के रवों को हटाने के लिए उष्मा की आपूर्ति की जाती है। उच्च निर्वात होने के कारण बर्फ के रवे पानी की अवस्था में परिवर्तन बिना ही सीधे वाष्पीकृत हो जाते हैं। बर्फ 4.7 मि. मी. पारा दाब से नीचे ही सीधे वाष्पीकृत होती है। संतोषजनक श्यान - शुष्कण के लिए अनुसंशित निर्वात 0.05 से 0.5 मि. मी. पारा दाब है। निर्वात का सही नियंत्रण अत्यावश्यक है अन्यथा श्यान - शुष्कण काफी प्रभावित होता है।

iii) पानी के भाप का निष्कर्षण

निर्वात कक्ष में हिमीकृत उत्पाद शुष्कण के समय बर्फ सीधे ही वाष्प बनती है। उत्पाद के पूर्णत: शुष्कण के लिए यह जरूरी है कि इस भाप को निकालते रहा जाय । कक्ष के दबाव पर एक किलो ग्राम पानी करीब 6 x10^3 घनमीटर भाप पैदा करता है और यह कठिन है कि भाप की इतनी बड़ी मात्रा को निकालते रहा जाय । सीधे यांत्रिक अवशोषक (चूषक) प्रक्रम का कभी भी उपयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि यह पंपिंग में बाधा पहुँचाता है।

बृहत्स्तर पर भाप को निकालने का सर्वसाधारण तरीका संघनीकरण है। भाप को प्रशीतक की शीतित कुंडलियों पर या क्रायसतह पर भेजा जाता है जहाँ यह भाप पुन: बर्फ बन जाती है। एकत्रित की गयी यह बर्फ गर्म जलवाष्प द्वारा गर्म करके निकाली जा सकती है। यह बर्फ पानी में परिणित हो जाती है जिसे कक्ष से बाहर निकाल लिया जाता है।

ग) खाद्य संग्रहण एवं संवेष्टन

जलकण को निकाल लेने के बाद खाद्य का संवेष्टन या तो निर्वात में ही या निष्क्रिय गैस की उपस्थिति में किया जाता है। साधारणतया इसके लिए कक्ष में नाइट्रोजन गैस को भेजा जाता है जिससे कक्ष शीघ्र ही वायुमंडलीय दबाव पर आ जाता है। नाइट्रोजन गैस के दो फायदें हैं :

क) हवा में उपस्थित प्रदूषकों के द्वारा खाद्य को प्रदूषित होने से बचाता है।

ख) नये शुष्क खाद्य को वायुमंडल से जलकण ग्रहण करने से रोकने के लिए यह एक सुरक्षा प्रदायक आवरण का काम करता है जो कि उत्पाद की लम्बी आयु के लिये अत्यावश्यक है।

घ) **खाद्य का पुनर्संगठन (रिकन्स्टीट्यूशन)** आवश्यकता के अनुसार श्यान - शुष्क खाद्य में ठंढा या गर्म पानी मिलाना पड़ता है। मिलाया गया यह पानी उत्पाद के गड्ढों में अवशोषित हो जाता है और खाद्य हमें फिर ठीक उसी मूल स्वाद एवं गंध में प्राप्त हो जाता है जैसे कि वो ताजा ही हो ।

शेष पृष्ठ 17 पर

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1993) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

करकस तेल - डीजल का एक विकल्प

राकेश कुमार पाण्डेय
डॉ. सुबोध कुमार दत्त
उत्परिवर्तन प्रजनन प्रयोगशाला
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उ. प्र.)

भूगर्भ में पेट्रोलियम के सीमित भण्डार हैं। विज्ञान की उन्नति के साथ - साथ पेट्रोलियम का इस्तेमाल लगातार बढ़ता जा रहा है। पेट्रोलियम पदार्थों की बढ़ती खपत तथा पृथ्वी के अन्दर उनके सीमित भण्डार को देखते हुए पेट्रोलियम का विकल्प खोजना अत्यावश्यक हो गया है। सौर ऊर्जा, वायु ऊर्जा तथा जल ऊर्जा का इस्तेमाल पेट्रोलियम पदार्थों के विकल्प के रूप में हो रहा है। नवीनतम खोजों के अनुसार जंगली अरण्डी के बीज के तेल को डीजल इंजन के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में अरण्डी के तेल की विशेषताओं, रासायनिक संरचना तथा डीजल के विकल्प के रूप में उसकी उपयोगिताओं एवं भारत में उक्त पौधे पर हो रहे शोध कार्य की उन्नति के विषय पर प्रकाश डाला गया है।

1974 के तेल संकट तथा 1991 के खाड़ी संकट के उपरान्त प्रमुख तेल आयात करने वाले देशों ने अपना ध्यान वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोतों की ओर दिया, जिससे कि अपनी सामान्य ऊर्जा की पूर्ति कर सकें। इस ऊर्जा समस्या के समाधान हेतु विभिन्न सरकारी संगठनों एवं शिक्षण संस्थाओं द्वारा सौर ऊर्जा, वायु ऊर्जा, जलशक्ति, जैवमात्रा ऊर्जा तथा जैवीय गैसों पर अनुसंधान कार्य हो रहे हैं। बहुत से देशों में द्रव ईंधन के कई विकल्पों की ओर ध्यान दिया गया, जिसमें से कुछ जीवाश्म ईंधनों जैसे कोयला एवं प्राकृतिक गैस भण्डारों तथा कुछ जैव मात्रा पर आधारित थे।

पौधों एवं पौधों के अवशेषों द्वारा इथेनाल व मीथेनाल के उत्पादन का भी अध्ययन किया जाता है। बीजीय तेल अल्कोहलिक ईंधन का विकल्प हो सकता है, क्योंकि यह पेट्रोल इंजन की अपेक्षा डीजल इंजन के लिये ज्यादा उपयुक्त है। पेट्रोलियम द्रव ईंधनों की उपलब्धता तथा दामों में भारी अनिश्चितता को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि बीजीय तेलों के डीजल के विकल्प के रूप में उपयोगिता पर शोध कार्य किये जांय तथा बीजीय तेलों को डीजल के विकल्प के रूप में विकसित किया जाय। ऐसे प्रयोग किये गये हैं, जिसमें डीजल इंजन को डीजल तेल तथा सोयाबीन तेल मिलाकर चलाया गया, तथा एक अन्य प्रयोग में डीजल इंजन में मक्का, नारियल, मूंगफली तथा सूर्यमुखी के कच्चे तेलों का प्रयोग किया गया तथा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि बीजीय तेल की ईंधन के रूप में शक्ति तथा तापीय योग्यता आसवित पदार्थों के तुल्य थी।

गत 29 सितम्बर 1981 को टकेडा एवं भासावुन्ना द्वारा एक प्रयोग किया गया जिसके अन्तर्गत एक क्युवोटा 4 स्ट्रोक डीजल इंजन (7अश्वशक्ति) तथा एक यान भार डीजल इंजन (10 अश्वशक्ति) को जाट्रोफा करकस (अरण्डी) तेल से चलाया गया तथा कई घंटे तक चलने के उपरान्त भी इंजन बिल्कुल ठीक हालत में पाया गया। उपर्युक्त प्रयोग द्वारा इस बात की पुष्टि की गयी कि "करकस तेल" डीजल का एक उचित विकल्प है। डीजल इंजन के नये ईंधन के स्रोत के रूप में "जाट्रोफा करकस" की उपयोगिता अभी बिल्कुल प्रारंभिक अवस्था में है तथा इस बारे मे बहुत कम प्रकाशित साहित्य उपलब्ध है जो कि जाट्रोफा के तेल के भविष्य व औद्योगीकरण पर प्रकाश डाल सके ।

"जाट्रोफा करकस" यूफार्बिएसी कुल का एक महत्वपूर्ण पौधा है। इसके बीज में लगभग 45% तेल पाया जाता है। इसके तेल को करकस तेल कहते हैं। "जाट्रोफा करकस" को भारत के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न स्थानीय नामों जैसे - द्रवान्ति,

जंगली अरण्डी, रत्नजोता, बागभेरेन्डा, जमालगोटा और कटामन्नकू, थाइलैंड में साबूदाम, बर्मा में थिनवानकयक्कू, फिलीपीन्स में ट्यूबा, चीन में माँ फाँगचाऊ, नेपाल में कदम, ब्राजील में पिनहीरो डी पर्गा, फ्राँस में रिसिन डी अमेरिक और, श्रीलंका में रुपेन्डरु, (कीर्तकर एवं बसु 1933) आदि नामों से पुकारा जाता है। "जाट्रोफा करकस" एक उष्णकटिबंधीय पौधा है। मूलत: यह अमेरिकन प्रजाति का है, जो कि भारत के कुछ भागों में उगने हेतु अनुकूलित हो गया है। यह झाड़ीय पौधा सामान्य तौर पर अर्धवनीय अवस्था में कृषि योग्य भूमि के चारों तरफ तथा गाँवों के आस - पास झाड़ियों की बाड़ के रूप में उगाया जाता है। यह महत्वपूर्ण शुष्कोद्भिद बहुवर्षीय पौधा विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगने के लिए अनुकूलित है। यह बंजर, ऊसर तथा अपरदनीय मिट्टी में आसानी से उगाया जा सकता है, यही कारण है, कि ये कृषि योग्य भूमि को प्रभावित नही करता है।

वंश जाट्रोफा की कुल 70 जातियाँ मुख्यत: अमेरिका में पायी जाती है। "भारत की संपदा" पुस्तक के अनुसार जाट्रोफा की 9 जातियाँ भारत में पायी जाती हैं, जिनमें से "जाट्रोफा करकस" एक है।जाट्रोफा मोलुकोसा तथा "जाट्रोफा युरेन्स," "जाट्रोफा करकस" के ही पर्याय हैं (लाट 1890 तथा सुब्रह्मण्यन आदि 1971) ।

"जाट्रोफा करकस" एक छोटा पेड़ होता है, जिसकी ऊँचाई लगभग 20 फीट तक तथा तने का व्यास लगभग 9 इंच होता है। पौधे को बीज द्वारा अथवा कायिक प्रवर्धन द्वारा उगाया जा सकता है। बीज के अंकुरण का उचित समय अप्रैल के द्वितीय सप्ताह से लेकर मई के अन्तिम सप्ताह तक का होता है। पौधे को सीधे बीज के द्वारा उगाया जा सकता है अथवा एक महीने के प्राँकुर को स्थान्राँतरित करके भी उगाया जा सकता है। पौधे के बीच में उचित दूरी कम से कम 1 मी. x 2 मी. x 2 मी. की होनी चाहिये । पौधों को अक्टूबर के महीने में तने के टुकड़े के प्रवर्धन द्वारा भी आसानी से उगाया जा सकता है। आरम्भ में पौधों की वृद्धि काफी धीमी होती है पर वर्षा ऋतु के आगमन के साथ - साथ वृद्धि तेज हो जाती है। तना दृढ़, माँसल तथा चिकना होता है, छाल की सतह चिकनी और हरी - पीली रंग की होती है। लकड़ी स्पंजी और मुलायम होती है। पत्तियाँ अनुवर्ती, सवृन्त पंचकोणीय और चिकनी होती हैं। वृन्त गोल चिकना व हरा होता है।

"जाट्रोफा करकस" में वर्षा ऋतु एवं गर्मी में फूल आते हैं और जाड़ों में फल पक कर तैयार हो जाता है। पौधा द्विलिंगी पर फूल एक लिंगी होता है फूल प्रोटोगायनस होता है अर्थात मादा पुष्प पहले परिपक्व होते हैं और नर पुष्प बाद में। पुष्पक्रम ससीमाक्षी होता है जो कि शाखाओं के अग्रभाग पर निकलता है। नर पुष्प में बाह्यदल - 5, हरे तथा दल - 5, हल्के, पीले जुड़े हुए होते हैं, पुंकेसरों की संख्या 10 होती है, जो कि दो चक्रों में व्यवस्थित होते हैं । मादा पुष्प एकलिंगी, पूर्ण, सवृन्त, तृज्या सममिति, जायाँग युक्ताण्डपी, अण्डाशय - उत्तरवर्ती, तथा अक्षीय बीजाण्डन्यास होता है। फल कोकाई होते हैं तथा प्रत्येक फल में सामान्यत: 3 बीज होते हैं । प्रत्येक बीज का वजन 0.5 - 0.6 ग्राम, लम्बाई 1.60 - 1.70 सेंमी तथा चौड़ाई 100 - 1.10 सेमी. के बीच होती है ।

बीज में 30 से 50 प्रतिशत तक हल्के पीले रंग का तेल होता है जिसकी आर्द्रता 7 प्रतिशत तक होती है। बीज द्वारा तेल का निष्कर्षण "विलायक निष्कर्षण विधि" द्वारा अथवा "हाइड्रोलिक दाब विधि" द्वारा किया जा सकता है। इसमें पेट्रोलियम ईथर को विलायक के रूप में इस्तेमाल करते हैं। तेल में लगभग 21 प्रतिशत संतृप्त वसीय अम्ल तथा 79 प्रतिशत असंतृप्त वसीय अम्ल होता है। पामेटिक अम्ल, स्टियरिक अम्ल, ओलिक अम्ल तथा लाइनोलिक अम्ल तेल के प्रमुख ज्ञात अपघटक हैं। वसीय अम्ल मिथाइल ईस्टर का जी. एल. सी. विश्लेषण निम्नलिखित निष्कर्ष प्रदान करता है ।

पामेटिक अम्ल	- 18.5 %
स्टियरिक अम्ल	- 2.3 %
ओलिक अम्ल	- 49.0 %
लाइनोलिक अम्ल	- 29.7 %

"जाट्रोफा करकस" एक बहुउपयोगी पौधा है तथा इसके प्रत्येक भाग का आर्थिक महत्व है। मुख्यत: इसका तेल डीजल के विकल्प के रूप में उभर कर सामने आया है । यह एक औषधि प्रदायी पौधा है इसका बीज गर्भपात में सहायक होता है। यह गाँठ दर्द, ड्रोप्सी और लकवा के इलाज में इस्तेमाल किया जाता है।"विलियम राक्सबर्ग" के अनुसार निर्धन लोग इसके तेल का इस्तेमाल दीप और चिराग जलाने में करते हैं। करकस तेल के जलने में कम मात्रा में कार्बन मॉनोऑक्साइड निकलता है तथा इसमे कम गन्ध आती है, जिससे इसके जले या अधजले गैस द्वारा पर्यावरणीय प्रदूषण का खतरा कम से कम रहता है। "करकस तेल" चिकनाहट के लिए तथा साबुन एवं मोमबत्ती उद्योग में इस्तेमाल किया जाता है। करकस तेल त्वचा रोगों में बहुत उपयोगी है यह बेजिल बेंजोएट के साथ मिलाकर खुजली की दवा के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसके तेल को आयरन ऑक्साइड के साथ मिलाकर वार्निश के रूप इस्तेमाल किया जाता है। जापानी शोध कर्ता हिरोटा एव होरीमुची के अनुसार "करकस तेल" में कैंसर के उपचार की महत्वपूर्ण क्षमता होती है। बीज की खली में बहुत ज्यादा मात्रा में नाइट्रोजन होता है, लेकिन इसका इस्तेमाल जानवरों के चारे के रूप में नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह "करसीन" नामक रसायन की उपस्थिति के कारण जहरीला होता है, लेकिन इसका इस्तेमाल खाद के रूप में किया जा सकता है। "करकस तेल" की खली कम्पोस्ट से भी अच्छी खाद होती है, क्योंकि इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम की मात्रा कम्पोस्ट खाद की तुलना में अधिक होती है (सारणी)।

सारणी

"जाट्रोफा करकस"	बीज खली	कम्पोस्ट
नाइट्रोजन -	4.44 %	0.97 %
फास्फोरस –	2.09 %	0.69 %
पोटैशियम -	1.68 %	1.68 %

"जाट्रोफा करकस" के पौधे को बाड़ के रूप में इस्तेमाल किया जाता है, क्योंकि इसको किसी भी इच्छित ऊँचाई पर काटा जा सकता है। माडगास्कर एवं दक्षिण पश्चिम अफ्रीका में इस पौधे को वनीला पौधे के सहारे के लिए उगाया जाता है। इसकी छाल को गाँव में दातून के लिए इस्तेमाल किया जाता है तथा इसकी रस को दाँत दर्द के निवारण के रूप में इस्तेमाल किया जाता है तथा इससे बाह्य रक्त स्राव भी रुक जाता है ।

पौधे के प्रत्येक भाग से चिपचिपा, तीक्ष्ण गंध युक्त कफ निवारक लेटेक्स निकलता है जिसमें 14.6% रेजिन होता है। लेटेक्स को सुखाकर चिन्हित इंक के रूप मे इस्तेमाल किया जाता है। लेटेक्स को बच्चे बुलबुले के रूप में उड़ाते हैं और मनोरंजन करते हैं। आँख में पड़ने पर यह आदमी को अन्धा तक बना देती है। इसकी छाल में शुष्क आधार पर लगभग 37% टैनिन होता है। इससे "नीला रंग" निष्कर्षित किया जाता है। छाल में थोड़ी मात्रा में मोम भी होता है, मोम में मेलिसिल अल्कोहल एवं मेलिसिल मेलिसेट का मिश्रण होता है। इसकी कोमल पत्तियों को जावा एवं मलाया के लोग भूनकर खाते हैं। आसाम में पत्तियों का इस्तेमाल "रेशम के कीट" के भोजन के रूप में किया जाता है। जड़ की छाल को गोवा में हृदय ज्वर में इस्तेमाल किया जाता है तथा थाइलैंड में इसको हींग तथा मक्खन के साथ मिलाकर दस्त और दुष्पचन में प्रयोग करते हैं। पत्ती को पीसकर बाह्यलेप लगाने से स्त्रियों मे दुग्ध का स्रावण ज्यादा होने लगता है। पत्ती के रस का प्रयोग बवासीर में किया जाता है तथा बच्चों की जीभ पर भी दवा के रूप में लगाया जाता है। पत्तियों मे कीटनाशक गुण भी पाया जाता है, जावा में पत्तियों का धुआँ करके कीड़े - मकाड़ों को भगाया जाता है । जड़ में पीले रंग का तेल पाया जाता है जिसमें कृमिनाशक गुण होता है।

इस पौधे के औषधीय गुणों, जहरीले प्रभावों, रासायनिक गुणों, लेटेक्स आदि पर बहुत सारे वैज्ञानिक अध्ययन हुए हैं । इस पौधे में गुणसूत्रों की संख्या 22 होती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अभी तक इस पौधे की उच्च फलदायी प्रजातियों के विकास के सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ है। थाइलैंड के वैज्ञानिकों

साकागुची तथा कोचो ने इस पौधे पर शोध कार्य किया है। टकेडा तथा मिनोरु ने करकस तेल का डीजल इंजन के विकल्प के रूप में अध्ययन किया है।

'जाट्रोफा करकस" एक ऐसा पौधा है जिसकी उपयोगिता अभी तक सामान्य नागरिकों को ज्ञात नहीं है, यह पौधा ताप-रोधी भी है।अत: यह भारत के अन्य भागों में भी उगाया जा सकता है जहाँ कोई अन्य उपयोगी पौधा आसानी से न उग सके । इस प्रकार यह कृषि योग्य भूमि को प्रभावित नहीं करेगा। इस पौधे को एक तेल पौधे के रूप में शोध कार्य करके स्थापित करने की आवश्यकता है। लखनऊ के राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान के उत्परिवर्तन प्रजनन प्रयोगशाला में इस लेख के लेखकों द्वारा एक बड़ी शोध परियोजना पर कार्य, गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोत विभाग भारत सरकार के सहयोग द्वारा किया जा रहा है। इस परियोजना के अन्तर्गत "जाट्रोफा करकस" की नयी उच्च फलदायी किस्मों का विकास उत्परिवर्तन द्वारा किया जा रहा है। यह उत्परिवर्तन गामा किरणों द्वारा किया जाता है। आशा है कि उच्च फलदायी प्रजातियों का विकास राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान द्वारा कर लिया जायेगा तथा "जाट्रोफा करकस" एक तेल पौधे के रूप में स्थापित हो जायेगा ।

इस समय भारत में लगभग 90 मिलियन हेक्टेअर भूमि बेकार पड़ी है इसमें से कुछ भूमि का उपयोग इस पौधे को उगाने में आसानी से किया जा सकता है। इसकी अधिक मात्रा में उपज द्वारा हम पेट्रोलियम पदार्थों की बढ़ती आवश्यकता को कुछ हद तक पूरी कर सकते हैं।

हम आशान्वित हैं कि इस पौधे में प्रेरित उत्प्रेरण द्वारा महत्वपूर्ण सुधार करके इसकी नयी प्रजातियों का विकास राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में शीघ्र ही कर लिया जायेगा और यह पौधा भविष्य में पेट्रोलियम के एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में उभर कर सामने आयेगा ।

■■■

(पृष्ठ 13 का शेष भाग)

व्यावहारिक रूप में किसी भी प्रकार के खाद्य का श्यान-शुष्कण किया जा सकता है और गैर - मौसमी सब्जियों एवं फल साल भर उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराये जा सकते हैं। उपभोक्ताओं को तो सिर्फ इस खाद्य में पानी मिलाकर पुनर्संगठित करना होता है और वह खाद्य उपयोगिता के लिये पुन: ताजा तैयार हो जाता है।

श्यान - शुष्क खाद्यों की कीमत ताजे खाद्यों से तो अधिक होगी पर उनके संग्रहण एवं परिवहन का खर्च काफी कम होगा। उपभोक्ताओं को इसे रखने में किसी प्रशीतक की भी आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि उन्हें सामान्य वातावरण में इच्छानुसार कितने ही दिनों तक रखा जा सकता है।

ङ) **फायदे**

इस विधि के फायदों को देखते हुए अपने देश में इसके उद्योगों को विकसित करने का सुअवसर है। इसके फायदे निम्न हैं

अ) खाद्य के गुणों को प्रभावित किये बिना ही जलकण को निम्न तापक्रम पर निकाला जाता है।

ब) इस विधि से तैयार खाद्य काफी रंध्रमय होता है जो पुन: पानी अवशोषण के समय शीघ्र ही जल ग्रहण कर लेता है।

स) इस विधि से तैयार उत्पाद को आसानी से शुष्क चीजों की तरह इधर उधर ले जाया जा सकता है।

द) यातायात का खर्च कम हो जाता है क्योंकि खाद्य के भार में काफी कमी आ जाती है।

च) व्यावसायिक स्तर एवं मन्तव्य

विज्ञान और तकनीकी अज्ञानता और समझदारी के अभाव के कारण यह विधि अभी तक वाणिज्यिक स्तर पर उपयोग नहीं की जा रही है। इसके लिए हमारी सरकार, उद्योगपतियों तथा वैज्ञानिक और तकनीकी वर्ग को जिज्ञासु और सक्रिय होने की आवश्यकता है ताकि यह विधि अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हो सके ।

■■■

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1993) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

लुग्दी एवं कागज उद्योग द्वारा वायु प्रदूषण एवं रसायन अभियांत्रिकी

डॉ. आर. एन. शुक्ला
प्रयुक्त रसायन विभाग
सम्राट अशोक अभियांत्रिकी
महाविद्यालय, विदिशा (म. प्र.)

विश्व निगरानी संस्थान के सर्वेक्षण के अनुसार मानव स्वयं ही अपना कल्पनातीत भयंकर शत्रु है। मानव के कार्य कलापों एवं प्रकृति के साथ निरन्तर खिलवाड़ के कारण प्रकृति के स्थायित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है। विषम जनसंख्या जनित शहरीकरण एवं औद्योगिक क्रान्ति ने प्रदूषण की सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर पर्यावरण में रहने वाली भावी पीढ़ी का जीवन दुष्कर कर दिया है। प्रस्तुत लेख में अत्यन्त दूषित 20 उद्योगों में से एक, लुग्दी एवं कागज उद्योग जनित वायु प्रदूषण से उत्पन्न समस्यायें एवं उनके निराकरण के साथ पर्यावरणीय रसायन अभियांत्रिकी के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

वाशिंगट स्थित एक अनुसंधान संगठन 'विश्व निगरानी संस्थान' द्वारा प्रस्तुत नवीनतम प्रतिवेदन (विश्व की दशा - 1991) के अनुसार मानवीय क्रिया कलाप प्राकृतिक प्रणालियों के स्थायित्व को देहरी से इतनी दूर ढकेल रहें हैं जो कल्पना से भी परे है। प्रकृति के साथ यह खिलवाड़ जन संख्या वृद्धि तथा औद्योगिक उन्नति के साथ निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इस ने प्रदूषण की सभी सीमाओं का उल्लंघन कर पर्यावरण में रहनेवाली भावी पीढ़ी का जीवन दुष्कर कर दिया है। श्री ब्राडन और उनके सहयोगियों के अनुसार औद्योगिक क्षेत्र जलीय प्रदूषण से अधिक वायु प्रदूषण को प्रभावित कर रहे हैं। क्योंकि वायु के फैलाव की कोई परिसीमा भी नहीं होती है। यह अम्लीय वर्षा के रूप में और भी भयावह हो जाती है।

विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग की बैठक में भी औद्योगिक प्रदूषण द्वारा पर्यावरण प्रभाव पर भारी रोष प्रकट किया गया है। इसी तारतम्य में केंद्र सरकार ने 20 उद्योगों को अति अधिक दूषित माना है जिसमें लुग्दी एवं कागज उद्योग भी एक है। इस उद्योग में उत्सर्जित गैस, एवं कणमय धुएं ने पर्यावरण के जीव तथा वनस्पति के साथ वायुमण्डल को भी अपनी चपेट में ले लिया है। अतः इन वायु प्रदूषकों के कारण से पर्यावरण को संतुलित रखने में अधिक कठनाई का सामना करना पड़ रहा है।

सामान्यतः लुग्दी निर्माण प्रक्रम में विभिन्न अभियांत्रिकी का उपयोग किया जाता है। लेकिन उत्पादन की अधिक मात्रा एवं गुणवत्ता की दृष्टि से क्राफ्ट तकनीकी अभियांत्रिकी रसायन महत्वपूर्ण है। लुग्दी निर्माण प्रक्रम को निम्न चार प्रभागों में रखा जा सकता है.

1) पाचक प्रभाग, 2) विरंजक प्रभाग, 3) कागज निर्माण प्रभाग, तथा 4) रसायन पुनः प्राप्ति प्रभाग

सर्व प्रथम पाचक प्रभाग में तन्तुमय कच्चे माल (बांस, कठोर एवं कोमलकाष्ठ, घास व कृषि से निष्पन्न अवशिष्ट) भारी रसायन ($NaOH + Na_2S$) रूपी सफेद द्रव से नियंत्रित परिस्थिति में क्रिया करके दुर्गंधमय विषैली गैसों (सारिणी- 1) का उत्सर्जन करते हैं । इन गैसों में H_2S, CH_3SH, $(CH_3)_2S$, $(CH_3)_2S_2$ व SO_2 अतिअधिक मात्रा में होती है।

इन्हें निम्न दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

1) कम आयतन एवं उच्च सान्द्रता की गैस।

2) उच्च आयतन एवं निम्न सान्द्रता की गैस।

कम आयतन एवं उच्च सान्द्रता की गैस मुख्य रूप से पाचक यंत्र, बहुप्रभावी वाष्पत्र आदि क्षेत्र की है (चित्र - 1) जिनको चूने की भट्टी एवं ज्वलन भट्टी में ले जाया जाता है। उच्च आयतन तथा निम्न सान्द्रता की गैस मुख्य रुप से ब्रोन स्ट्राक वाशर एवं विलायक क्षेत्र से निकलने वाली है इनकी उपस्थिति सीमा इस प्रकार है। H_2S - 0.02 से 0.05, CH_3SCH_3 - 0.01 से 0.02 तथा CH_3SSCH_3 - 0.01 से 0.03 पौंड प्रति टन लुग्दी पर

रसायन अभियांत्रिकी

वायुमण्डलीय ताप पर CH_3SH और H_2S गैसीय स्थिति में, CH_3SCH_3 और $CH_3SS\ CH_3$ निम्न क्वथनांक वाष्प की स्थिति में एवं $CH_3\ SH$, H_2S जलीय विलयन में वियोजित की स्थिति में होती है। CH_3SH, H_2S की तुलना में कम अम्लीय स्वभाव होने के कारण धनायन क्रियाशीलता के

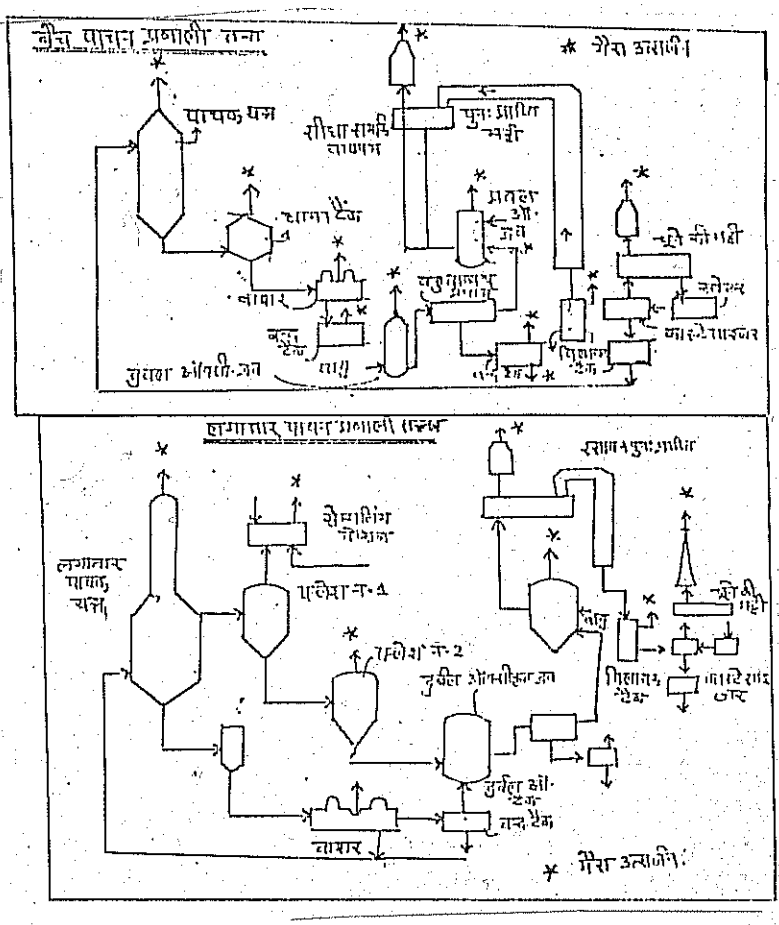

चित्र– 1 पाचन प्रणालियों के रेखा चित्र

सारणी - 1

विभिन्न स्त्रोतों द्वारा अपचयत सल्फर गैस की सान्द्रता एवं उत्सर्जन गति

उत्सर्जन स्त्रोत	H_2S		CH_3SH		CH_3 S CH_3		CH_3-S-S-CH_3	
	सान्द्रता पी. पी. एम आयतन में	उत्सर्जन गति प्रति टन लुग्दी पर	सान्द्रता पी. पी. एम आयतन में	उत्सर्जन गति प्रति टन लुग्दी पर	सान्द्रता पी. पी. एम आयतन में	उत्सर्जन गति प्रति टन लुग्दी पर	सान्द्रता पी. पी. एम आयतन में	उत्सर्जन गति प्रति टन लुग्दी पर
पाचक यन्त्र i) वहाव गैस (धमन गैस)	0–1000	0–0.15	0.10,000	0–1.3	100–45000	0.05–3.3	10–10000	0.05–2.0
ii) समान्य गैस (उच्चाक्व गैस)	0–2000	0–0.05	10-5000	0.0–0.3	100–60000	0.05–0.5	100–60000	0.05–1.0
पाचक यंत्र लगातार	10–300	0–0.1	500–10000	0.5–1.0	1500–7500	0.05–0.5	500–3000	0.05–0.4
प्रक्षालित बन्द टैंक	0.2	0–0.01	10–50	0–0.01	10–700	0.0–750	0.0–0150	0.05–1.0
प्रक्षालित छत्र द्वार	0.5	0–0.1	0.5	0.05–1.0	0.15	0.05–0.5	0–3	0–0.03
वाष्पन गर्म टैंक	600–9000	0.05–1.5	300–3000	0.05–0.8	500–5000	0.05–1.0	500–6000	–
काले द्रव	0–10	0–0.1	0–25	0–0.1	10–500	0–0.4	2–95	0–0.3
पुन : प्राप्ति भट्टी	0–1500	0–25	0–200	0–2	0–100	0–1	2–95	0–0.3
i) प्रगलन विलीन टैंक	0–75	0–1	0–2	0–0.01	0–4	0–0.01	0–3	0–0.1
(ii) चूने की भट्टी	0–250	0–0.5	0–100	0–0.2	0–50	0–0.05	0–20	0–0.3
(iii) चूने का स्कैल्ट वैन्ट	0–20	0–0.01	0–1	0–0.01	0–1	0–0.01	0–1	0–0.01
	SO_2		SO_3		NO_x as NO_2			
पुन : प्राप्ति भट्टी	0–1500	0–50	0–150	0–4	50–400	1.2–10		
चूने की भट्टी	0–200	0–14	–	–	100–260	10–25		
प्रगलन विलीन टैंक	0–100	0–0.2	–	–	–	–		
शक्ति गृह	–	–	–	–	161–232	5–10		

लिये उत्तरदायी है। तथा यौगिक का वियोजन वाष्प में करता है इसलिये निम्न साम्य महत्वपूर्ण है।

$H_2S \rightleftharpoons HS^- + H^+ \rightleftharpoons S^{--} + 2\ H^+$.... (1)

$CH_3SH \quad CH_3S^- + H^+$

जब कि CH_3S और CH_3SSCH_3 आयनित नही होते हैं। इसलिये यह CH_3SH वायु से अतिशीघ्र ही ऑक्सीकृत हो जाते है तथा फिनोल क्रिया की गति को बढा देता है। वायुमण्डलीय ताप पर मरकैप्टन वायु ऑक्सीकरण द्वारा CH_3SSCH_3 में परिवर्तित होता है।

$2\ CH_3S \rightarrow (CH_3)_2S_2$ .... (2)

$(CH_3)_2S$ और $(CH_3)_2S_2$ सामान्यत: O_2 से अक्रियाशील हैं लेकिन O_3 से शीघ्र क्रियाशील होते है व दुर्गंधमय यौगिक का बनना क्षारीय माध्यम में होता है अत: क्राफ्ट द्रव में सल्फाइट आयन का जल साम्य निम्न समीकरण से दर्शाया जाता हैं

$S^{--} + HOH \xrightarrow{K_1} HS^- + OH^-$ ... (3)

$HS^- + HOH \longrightarrow 2H_2S + OH^-$

CH_3SH और $(CH_3)_2S$ लिग्निन के मिथॉक्साइल समूह से जुडकर पाचन द्रव में हाइड्रोजन सल्फाइट आयन बनाते है, यथा,

लिग्निन-O- CH_3-SH $\xrightarrow{K_2}$ CH_3SH + ... (4)

सारणी – 2 लुग्दी एवं कागज निर्माण उद्योग द्वारा वायु प्रदूषण

प्रकार	स्रोत	प्रभाव
गैस		
सल्फर डाई ऑक्साइड (SO_2)	शक्ति बॉयलर, रसायन पुन: प्राप्ति इकाई, मेकअपद्रव (सल्फाईट लुग्दीकरण), वाष्पन्न (सल्फाइट लुग्दीकरण), धमन गैस, चूने की भट्टी (क्राफ्ट)	मनुष्यों, जानवरों एवं वनस्पति के लिए विषाक्त अधिकतम प्रतिबन्धन सीमा–0.20 पी. पी. एम., प्रभावशीलता 0.3 पी. पी. एम. 8 घण्टे तक
हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S)	पुन : प्राप्ति इकाई (क्राफ्ट विधि) , धमन गैस, वाष्पन्न गैस, चूने की भट्टी, विलयनशीलता टैंक, आधुनिक पुन: प्राप्ति इकाई	मनुष्यों, जानवरों एवं वनस्पति के लिए विषाक्त अधिकतम प्रतिबन्धन सीमा 0.1 पी. पी. एम., प्रभावशीलता 0.1 पी. पी. एम.
नाइट्रोजन के ऑक्साइड ($NO + NO_2$)	शक्ति बॉयलर / पुन : प्राप्ति भट्टी इकाई	विषक्तता की अधिकतम प्रतिबन्धन सीमा 0.06 पी. पी. एम. 24 घण्टे तक
मिथाइल सल्फर CH_3SH $CH_3–S\ CH_3$ $CH_3–S.S.\ CH_3$	क्राफ्ट लुग्दीकरण, धमन गैस, वाष्पन्न, रसायन पुन: प्राप्ति इकाई, विलयनशीलता टैंक, चूने की भट्टी	दुर्गंधमय, खरासमयता
कण		
फ्लाइ ऐश (उडनराख) कार्बनिक / अकार्बानिक पदार्थ का मिश्रण	वाष्पन्न धमन गैस, शक्ति बॉयलर, पुन: प्राप्ति भट्टी	दम घुटना, संक्षरणता
$Na_2CO_3 + Na_2SO_4 + CaCO_3 + CaO$	पुन: प्राप्ति भट्टी, चूने की भट्टी	दम घुटना, संक्षरणता

तथा पीएच -12 पर जलीय विलयन में CH_3SH का वियोजन होता है, यथा,

$$CH_3SH + OH^- \rightleftharpoons CH_3S^- + HOH \quad ...(5)$$

इसलिये CH_3SH का निकलना उस समय होता है जब पाचक यंत्र को बहाते है अत: इसका बनना तब तक जारी रहता है जब तक इसकी पीएच. साम्य बिन्दु से नीचे न हो जाये। CH_3S का बनना मिथाइल मरकैप्टन आयन को लिग्निन को मिथॉक्सी से संलग्न होना है।

$$\text{लिग्निन - O - } CH_3 + CH_3S \xrightarrow{K_2} (CH_3)_2S + \text{लिग्निन - O} \quad ----(6)$$

CH_3SH के ऑक्सीकरण से $(CH_3)_2S$ बनता है।

$$4\ CH_3SH + O_2 \rightarrow 2CH_3S_2 + 2HOH \quad ....(7)$$

अपचयन सल्फर ऑक्सीकृत होकर SO_2 में बदल जाती है। SO_2 अम्लीय प्रकृति की होने के कारण क्षार द्वारा अवशोषित होकर सीधे सम्पर्क वाष्पन्न के काले द्रव की पीएच को कम करता है

$SO_2 + 2\ NaOH \rightarrow Na_2SO_3 + HOH$. ..(8)

$Na_2SO_3 + SO_2 + OH \rightarrow 2\ NaHSO_3$ ...(9)

H_2S भी अम्लीय गैस है जो जलीय विलयन में धीमी गति से आयनित होती है। यह आयनन दो पदों में होता है। प्रथम, हाइड्रोसल्फाइट आयन का बनना और द्वितीय, सल्फाइट आयन का बनना।

$H_2S \rightleftharpoons HS^- + H^+ \rightleftharpoons S^{--} + 2H$ ...(10)

काले द्रव में सोडियम सल्फाइट की उच्च सान्द्रता होती है तथा पीएच मान कम होता है जो Na_2S को सोडियम हाइड्रोसल्फाइट में जल अपघटित कर देता है। यह वाष्पन्न के काले द्रव से H_2S को निकालता है। भट्टी के अपचयन क्षेत्र में अपचयत सल्फर से H_2S बनती है। लेकिन सामान्य भट्टी के ज्वलन क्षेत्र में ऑक्सीकृत होकर SO_2 बनाती है। काले द्रव का ऑक्सीकरण हाइड्रोजन सल्फाइड गैस के निकास को कम कर देता है।

वायु प्रदूषण तथा समस्याएं :

वायु प्रदूषण की निम्नलिखित समस्याएं हैं :

i) अपचयत सल्फर यौगिक (TRS) का बनना

अपचयत सल्फर का उत्सर्जन मुख्य रूप से पाचक यन्त्र, बहु प्रभावी यंत्र आदि से होता है। पाचक यंत्र से बहाव के दौरान अधिक सान्द्रता वाली गैस निकलती है। इसके साथ रसायन पुन: प्राप्ति भट्टी भी सल्फर के लिये उतनी ही उत्तरदायी है क्योंकि गाढ़े काले द्रव को उसी भट्टी में ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

ii) सल्फर रहित कार्बनिक यौगिक का बनना

अन्य प्रकार की दुर्गंध का उत्सर्जन लकड़ी में उपस्थित हाइड्रोकार्बन यौगिक जो निष्कषर्ण यौगिक के साथ संलग्न रहते हैं जैसे टारपीन, वसीय अम्ल, रोजिन अम्ल, पिच नियन्त्रण यौगिक, विरंजन रसायन, पोलीमर, हाइड्रोकार्बन आदि रसायन से क्रिया करके अधिक मात्रा में उत्सर्जित होते हैं।

iii) कणों का वायु के साथ निकलना

कणों में मुख्य रूप से प्राथमिक तथा द्वितीयक कणों का उत्सर्जन गैस के साथ होता है। प्राथमिक कण भौतिक एवं रसायनिक विधि के कारण बनते हैं जबकि द्वितीयक कण गैसीय उत्सर्जन रसायनिक क्रिया के कारण। ये वायुमण्डल में 7 से 40 दिन तक रहते हैं ये कण मुख्य रुप से रसायन पुन: प्राप्ति भट्टी, चूने की भट्टी, शक्ति गृह से निकलते हैं। जिनमें Na_2SO_4, Na_2CO_3, CaO, $CaCl_2$, NaCl रसायन रहते है।

iv) ब्रान स्टाक वाशर से गैस का निकलना

जब अन्तिम ब्रोन स्टाक वाशर में उदासीन पीएच का गर्म पानी मिलाते है तब दुर्बल काले द्रव की पीएच 10 हो जाती है जो साम्यावस्था के दौरान H_2S और CH_3S को कम कर देती है।अत: कम पीएच विलेय H_2S की सान्द्रता बढ़ाती है।

v) भट्टी द्वारा गैस का निकलना

क्राफ्ट तकनीकी में भट्टी का महत्व उत्सर्जन क्षेत्र के रूप में होता है जो कि प्रक्रम की परिस्थिति पर निर्भर करती है। यदि हम प्रक्रमं परिस्थिति की तरफ अधिक हटते हैं तब भट्टी सल्फाइट उत्सर्जन का मुख्य स्रोत बन जाती है। इस प्रक्रिया में भट्टी में जलाने के लिये काले द्रवे का बहाव, द्वितीयक हवा और काले द्रव को जलाने की गति का अनुपात, भट्टी के ज्वलन गैस में उपलब्ध ऑक्सीकरण की अधिकता, तथा काले द्रव के बहाव हेतु उपकरण का आकार महत्व के हैं।

vi) विरंजक इकाई द्वारा गैस का निकलना

विरंजनीकरण मुख्य रूप से क्लोरीन के यौगिकों जैसे क्लोरीन डाइऑक्साइड. हाइपोक्लोराइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड से की जाती है। अत: इस क्रिया में क्लोरीन का उत्सर्जन 0.1 से 0.3 किग्रा प्रति टन, ClO_2 का 0.1 से 1.0 कि. ग्रा. प्रति टन और SO_2 का 0.1 से 1.0 कि ग्रा. प्रति टन तक होता है जो एक गम्भीर समस्या है।

बाह्य कारकों का प्रभाव :

रसायनिक अभिक्रिया 4, 5 और 6 के द्वारा विदित होता है कि H_2S आयन लिग्निन के मिथाइल समूह से क्रिया करके मिथाइल मर कैप्टन एवं समानान्तर आणुविक अभिक्रिया में मरकैप्टाईड आयन दूसरे मिथाइल समूह से क्रिया करके $(CH_3)_2S$ बनाते है। इसलिये मिथाइल मरकैप्टन का सान्द्रण $(CH_3)_2S$ के बनने की गति को बढ़ाता है। अत: परिस्थिति के अध्ययन से कह सकते हैं कि जब मरकैप्टन बनता है तब द्वितीयक गति एवं सान्द्रण सामान्य हो जाता है। पाचन में CH_3SH का ऑक्सीकरण $(CH_3)_2S$ में हो जाता है एवं दूसरी क्रिया में CH_3SH से $(CH_3)_2S$ और H_2S बनाते रहते है ($2CH_3S \rightarrow CH_3S + H_2S$)।

अत: निम्न बाह्य कारक क्रियाओं में प्रभाव डालते हैं।

अ) क्रियाशील क्षारक और सल्फरता का प्रभाव

CH_3SH का आयन $(CH_3)_2S$ के बनाने में प्रभावशील है। अत: पाचन में क्षार की सान्द्रता में वृद्धि से अपचयन द्वारा CH_3SH तथा $(CH_3)_2S$ का बनना जारी रहता है। इसके साथ क्रियाशीलता क्षार की वृद्धि से दुर्गंध पदार्थ की कमी होती है। लिग्निन का पृथक्करण बिना दुर्गंध के होता है। सल्फरता उच्च होने के कारण हाइड्रोसल्फाइट आयन की सान्द्रता और मिथाइल मरकैप्टन का बनना अधिक होगा। सामान्यत: उच्च सल्फरता सल्फर पदार्थ को कम अपचयत होने देती है।

ब) ताप एवं पीएच का प्रभाव

काले द्रव से H_2S का निकलना पीएच और सान्द्रण पर निर्भर करता है। पीएच का मान 1 इकाई बढ़ाने पर वाष्प दाब 10 इकाई बढता है। कोमल काष्ठ में CH_3SH के बनने में पीएच का मान अधिक हो जाता है जब कि CH_3S का कम।

स) काष्ठ जाति का प्रभाव

कठोर काष्ठ कोमल काष्ठ की तुलना में अधिक गंध देता है। इसका कारण कठोर काष्ठ के लिग्निन में मिथॉक्साइल समूह कोमल काष्ठ की तुलना में अधिक होता है। 4 घटे की क्राफ्ट पाचन में कठोर काष्ठ कोमल काष्ठ की तुलना में 30 % अधिक गंधमय पदार्थ बनाते है।

द) ऊष्मा शोषक का आकार

CH_3SH और H_2S की पानी में विलेयता के संदर्भ से कह सकते हैं कि अधिक पानी के आयतन. में असंघनित गैस को प्रवाहित करने पर अवशोषण अधिक होता है। सामान्यतया काले द्रव का पुन: वाहन कम समय पाचन, निम्न सल्फरता पाचक द्रव एवं उच्च बची हुयी क्षार गंध को कम करती है।

प) दुर्बल काले द्रव का ऑक्सीकरण

दुर्बल काले द्रव के ऑक्सीकरण से सल्फाइट थायो सल्फेट में और कार्बनिक सल्फर यौगिक डाइ मिथाइल डाइसल्फाइट में ऑक्सीकृत होते हैं। 70^0 से. से अधिक का ताप तत्व सल्फर को बनने से रोकता है। इसके अलावा वायु बहाव भी ऑक्सीकरण को कम करती है।

उत्पन्न प्रदूषण का वायुमण्डल पर प्रभाव :

वायुमण्डल में अनेक पदार्थ विषजन्य हो सकते हैं किन्तु सामान्य रूप से मान्य वायु प्रदूषकों में गंधक ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, मिथाइल सल्फाइट, नाइट्रोजन ऑक्साइड प्रमुख हैं (सारणी–2)। इन गैसों का वायुमण्डलीय प्रभाव इस प्रकार हैं।

अ) SO_2 गैस

गंधक ऑक्साइड उच्च विनाशक होने के कारण वनस्पति की पत्तियों में हरित द्रव्य संयोजक को नष्ट कर देता है जिससे पत्ते पीले हो जाते हैं। इसके साथ ही यह जन्तुओं में उनके श्वासोच्छवास तंत्र को प्रभावित करके ऊपरी श्वसन नालिका को आघात पहुंचाती है। इसके साथ ही आखों में किरकिर उत्पन्न करती है।

ब) कार्बन मोनोऑक्साइड

कार्बन मोनोऑक्साइड जीव जन्तु के होमोग्लोबिन (रक्त से प्राणवायु का वाहक) से मिलकर कार्बेज हीमोग्लोबिन बनाते हैं जो रक्ताल्पता उत्पन्न करता है।

स) मरकैप्टन एवं अन्य मिथाइल सल्फर

मरकैप्टन एवं मिथाइल मोनो एवं डाइ सल्फाइट आंख, नाक और गले में खरास उत्पन्न करता है। इस खरास के आरम्भ में कुछ लोग बिना किसी कष्ट के आदी हो जाते हैं। किन्तु अधिक आयु में पहुँचने पर यह फुफ्फुस अवरोधन जीर्ण रोग, कारपुल मोनेम, तपेदिक हृदय पटल, गुर्देमें कार्य हीनता, स्नायु विकार, उदर कैंसर, एवं वंशाणु जन्य जैसी भयानक बीमारी का कारण बनते हैं। बैन्जीन पायरीन औसतन 3.850 नेनोग्राम प्रतिघन मीटर ही होती है जो कि कैंसर रोग का कारण है। अन्य कार्बनिक विष नासिका, आखों की वेदना अनुगयन वधित, श्वासकष्ट, फुफ्सीय विकार एवं भारण अतिपाती श्वासोच्छवास रोग भी उत्पन्न करते हैं।

वायु प्रदूषण का निवारण :

मैरी और रैनी नामक वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में प्रयोग करके अधिक ऑक्सीकरण और H2S के उत्सर्जन में संबंध स्थापित किया प्रयोगानुसार अन्य वैज्ञानिकों ने भी यह सारांश निकाला कि भट्टी में कम से कम कुल सल्फर का उत्सर्जन अधिक ऑक्सीजन के कारण हो पायेगा; ज्वलन गैस में इसकी सीमा 2.5 से 4% आयतन अनुसार होगी; इसके अलावा वायु बहाव की गति एवं काले द्रव के ज्वलन गति का अनुपात महत्वपूर्ण है। अत: काले द्रव के फुहार की गति सल्फर प्रदूषण को कम कर सकती है।

लुग्दी का निमार्ण विधि में नवीनीकरण से प्रदूषण का निवारण किया जा सकता है। जैसे क्रियाशील रसायन ($NaOH + 1/2Na_2S$) की सान्द्रता प्रारंभ में कम रखते हुये बाकी पूर्ण काल के दौरान एक सी होना आवश्यक है। पाचक द्रव में पाचन के दौरान विलेय लिग्निन की सान्द्रता हमेशा समान रखना आवश्यक है। विरंजनीकरण के दौरान क्लोरीन की मात्रा को कम करके ऑक्सीजन द्वारा लिग्निन पृथक्करण करना प्रदूषण को कम करता है। वाहि: स्राव से सल्फर उत्सर्जन पर नियंत्रण रखते है। यह प्रक्रिया सामान्यत: उसे सल्फेट में बदल देती है जो पुन: उपयोग में आता है। इलेक्ट्रोस्टेटिक प्रेसिपिटेटर के द्वारा 99.6% कणों को कम करके प्रदूषण का निवारण किया जाना सार्थक है।

वायु का फैलाव अपरिसीमित होने के कारण दूषित वायु की उपस्थिति पूर्ण वायुमण्डल एवं पर्यावरण को अति अधिक प्रभावित करती है। असंतुलित पर्यावरण न सिर्फ प्रकृति वरन् संपूर्ण प्राणी जीवन के अस्तिव को चुनौती दे रहा है। ऐसे समय में उद्योग की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। मानव जाति के सम्पूर्ण उत्थान के लिये जहां औद्योगिकीरण जरूरी है वहीं यह भी जरूरी है कि मानव न सिर्फ अपने बल्कि पर्यावरण के अस्तित्व के प्रति जागरूक रहे तथा रचनात्मक प्रयास करें।

■ ■ ■

लेखकों से निवेदन

"वैज्ञानिक" हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें:

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाए,
- लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अन्त में संलग्न कर दें,
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जाएंगी।

— संपादक

इयोसिनोफिल और इयोसिनोफिलिया

डॉ. रमेश सोमवंशी,
वरिष्ठ वैज्ञानिक
पैथालॉजी प्रभाग
भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, परिसर
इज्जतनगर, बरेली 243 122 (उ.प्र.)

रक्त में इयोसिनरागी श्वेत रक्त कोशिकाओं की सामान्य से बढ़ी हुई संख्या का पाया जाना 'इयोसिनोफिलिया' कहलाता है। इसके परिणामस्वरूप प्राय: सांस फूलने और खांसी की शिकायत हो जाती है। वास्तव में यह स्थिति अपने आप में जितनी अस्वस्थता है उससे अधिक अनेक रोगावस्थाओं का लाक्षणिक संकेत है। शारीरिक स्वास्थ्य में इयोसिनरागी श्वेत रक्त कोशिकाओं की भूमिका पर चर्चा प्रस्तुत है, इस लेख में ।

निरंतर खांसी और श्वास फूलने की अवस्था (दमा) से त्रस्त रोगी ने चिकित्सक से सम्पर्क किया। लक्षण सुन कर चिकित्सक ने (विभेदात्मक श्वेत कोशिका गणना) परीक्षण करवाने को कहा। पैथालोजिस्ट ने कांच की पट्टी (स्लाइड) पर रक्तालेप बनाया व जांच किया तथा परीक्षण परिणाम में लिखा - "इयोसिनोफिलिया" (इयोसिनरागी कोशिका बहुलता)। रोगी चकराया - यह क्या बला है?

रक्त में इयोसिनोफिल (इयोसिन रागी) नामक श्वेत रक्त कोशिकाओं की बढ़ी हुयी संख्या की अवस्था "इयोसिनोफिलिया" या "इयोसिनरागी कोशिका बहुलता" कहलाती है। इयोसिनरागी कोशिकायें, उदासीन रागी (न्यूट्रोफिल) तथा क्षाररागी (बेसोफिल) कोशिकाओं की तरह कणिकामय श्वेत रक्त कोशिकायें होती हैं । इन कोशिकाओं का संश्लेषण अस्थि-मज्जा में होता है और कुछ मात्रा में ये परिवहनीय रक्त और शरीर के कई संस्थानों, अंगो और ऊतकों में पायी जाती हैं। इयोसिनरागी कोशिकाओं के कणों में एच2 ओ2, कई प्रकार की कैटायनिक प्रोटीन तथा रसायन पाये जाते हैं जो कि परजीवी नाशक कोशिका विषाक्तता, हल्की जीवाणु नाशक इत्यादि क्रियाओं युक्त होते हैं । इयोसिनरागी कोशिका गणना को विभेदात्मक श्वेत रक्त कोशिका गणना अथवा "थोर्न परीक्षण" द्वारा ज्ञात किया जाता है। ये परीक्षण अत्यन्त सरल हैं तथा न्यूनतम सुविधा युक्त प्रयोगशालाओं में भी किये जा सकते हैं ।

"इयोसिनोफिलिया" को भलीभांति समझने से पूर्व इन कोशिकाओं की संरचना, जैव-रसायनिक संगठन, कार्य आदि जानने होगें । तभी इयोसिनोफिलिया की जटिलतम प्रक्रिया सरलता से समझी जा सकेगी ।

इयोसिनोफिल

कोशिका संरचना -

इयोसिनरागी श्वेत रक्त कोशिका, कणिकामय कोशिका समूह में वर्गीकृत है। इन में द्वि-खण्ड युक्त नाभिक होते हैं जो कि एक महीन धागे से आपस में जुड़े रहते हैं (चित्र - 1 तथा 2)। चूहों में खण्डरहित वर्तुलाकार अंगूठीनुमा नाभिक पाया जाता है। जीवद्रव में चमकदार गुलाबी - लाल सम प्रकार इयोसिन रंजित कण ढ़ीले-ढ़ीले भरे हुए होते हैं और इनका आकार व आकृति पशु प्रजाति तथा एक ही प्रजाति में भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरणार्थ पालतू पशुओं जैसे घोड़ों में ये कण सर्वाधिक बड़े होते हैं तथा बिल्लियों में ये प्राय: दण्डिका आकृति के होते हैं। कुत्तों की इयोसिनरागी कोशिकाओं के कणों में कुछ रिक्तिकायें पायी जाती हैं । रोगावस्थाओं तथा कई कारकों का इन कणों की संरचना पर व्यापक प्रभाव होता है।

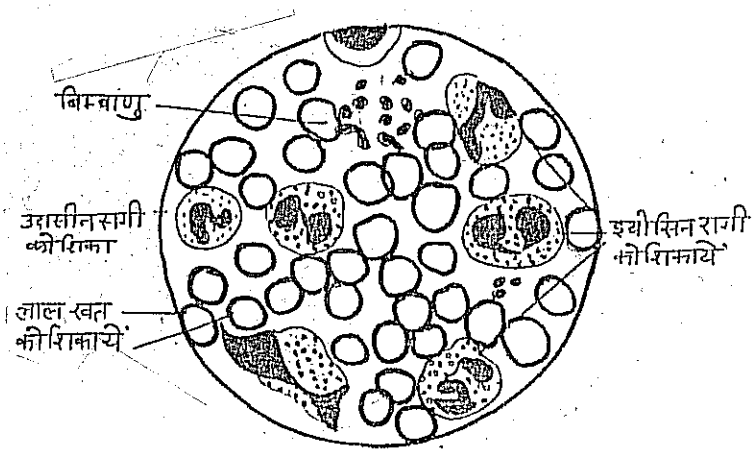

चित्र–1 प्रकाश सूक्ष्मदर्शी से रक्तालेप में दृश्य इयोसिनरागी कोशिकायें

स्केनिंग इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा इयोसिनरागी कोशिकाओं की सतही संरचना पता लगायी गयी है। इसमें कम सूक्ष्म अंकुर, कुछ कटक (Ridges), झालर तथा सतही फफोले पाये जाते हैं। इन कणों में उभार भी दिखायी देते हैं । चिपटी इयोसिनरागी कोशिकाओं में चमकदार स्वप्रदीप्ति भी दिखायी देती है जो कि इन कोशिकाओं की विशेषता मानी गयी है ।

इयोसिनरागी कोशिका कणों की परासंरचना और उत्पत्ति या जनन का पूर्ण क्रम ज्ञात है। इन कोशिकाओं में समांगी और क्रिस्टलाभ दो प्रकार के कण पाये जाते हैं (चित्र 2 तथा 3) ।इसमें एक अन्य प्रकार का कण भी वर्णित किया गया है। लगभग बीस स्तनपायी प्रजातियों की परिपक्व इयोसिनरागी कोशिकाओं में 0.02-0.2 माइक्रोम्यू आकार के '-बहुआकारी विशिष्ट सूक्ष्म कणों" का वर्णन किया गया है।

ये स्मूथ इंडोप्लाजमिक रेटीकुलम की प्रोफाइल जैसे होते हैं और इयोसिनोफिलिया के रोगियों में असंख्य होते हैं। परिपक्व इयोसिनरागी कोशिकाओं में गोल्जी कॉम्पेलेक्स, माइटोकांड्रिया, राइबोसोम्स और रफ इंडोप्लाजमिक रेटीकुलम अधिक स्पष्ट होता है। अधिकांश प्रजातियों में विशिष्ट क्रिस्टलॉभ कण का कोर "इलेक्ट्रॉन डेंस" तथा अपेक्षाकृत कम "इलेक्ट्रॉन डेंस" होमोजेनियस मेट्रिक्स द्वारा घिरा होता है (चित्र-3)। कोर में अनुदैर्ध्य तथा अनुप्रस्थ परिच्छेदन आवर्तिता पायी जाती है और ये यांत्रिक, परासरणी और कुछ प्रतिकारक प्रतिक्रियाओं के प्रतिरोधी होते हैं । कुत्ता, बिल्ली, बकरी, गिनीपिग, चूहा, बंदर, मनुष्य इत्यादि में क्रिस्टलॉभ कण पाये जाते है जबकि समांगी कण घोड़ा, मिंक और गोरिल्ला की इयोसिनरागी कोशिका में मिलते हैं। इयोसिनरागी कोशिकाओं का कुछ दिनों का संक्षिप्त जीवनकाल होता है तथा मृत कोशिकायें पुनरुत्पादन करने में सक्षम होती हैं।

जैव-रसायनिक संगठन :

इयोसिनरागी कोशिकाओं के कणों में कई कैटायनिक प्रोटीन और लाइसोसोमल प्रतिकारक पाये जाते हैं। इन कोशिकाओं में अपेक्षाकृत अधिक परऑक्सीडेस, बीटा ग्लूकोरनिडेस, फास्फोलिपेस

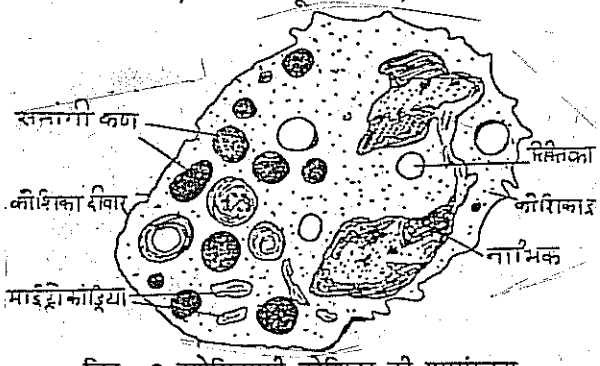

चित्र– 2 इयोसिनरागी कोशिका की परासंरचना

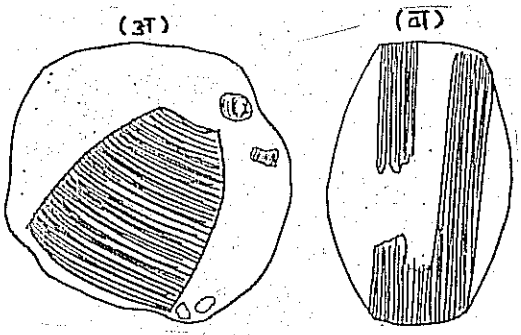

चित्र– 3 (अ) इयोसिनरागी कोशिका की क्रिस्टलाभ कण (अगुलियों की छाप जैसे चिन्ह)
(ब) इयोसिन रागी कोशिका का क्रिस्टलाभ कण (अनुदैर्ध्य लेमिली या पट्टी)

और एरिल सल्फाटेस क्रियायें तथा कम हेक्साकाईनस और एल्कालाइन फास्फाटेस क्रियायें होती है। मनुष्य, गाय, चूहा आदि की इयोसिनरागी कोशिकाओं के कणों की आधात्री (मैट्रिक्स) में जिंक की अधिक मात्रा पायी जाती है। इन कोशिकाओं में प्लासमीनोजेन, इन के सक्रिय कर्ता, हैगमेन कारक, काइनिन उत्पादक क्रियायें और काईनिनेस और थ्रम्बोप्लास्टिक क्रियाओं का वर्णन किया गया है। कोशिका रसायनिक परासंरचना द्वारा विभिन्न प्रकार के रसायनों व प्रतिकारकों की स्थितियों सम्बंधी जानकारी भी खोजी गयी हैं।

इयोसिनरागी कोशिकाओं में विशिष्ट गुणों वाला परऑक्सीडेस ज्ञात हुआ है जो कि जीवाणु प्रतिरोधी, परजीवीप्रतिरोधी तथा कोशाविषमता क्रियाओं वाला होता हैं। जब इयोसिन परऑक्सीडेस एच2 ओ2 और आयोडाइड, क्लोराइड अथवा ब्रोमाइड के साथ हेलाइड नामक जटिल पदार्थ बनता है तो यह जीवाणु नाशक हो जाता है। ये जटिल पदार्थ मास्ट नामक कोशिकाओं का विकणीकरण करा देते हैं। बिल्ली की इयोसिनरागी कोशिका में परऑक्साइड सामान्यतया अनुपस्थित होता है जब कि मनुष्य में आनुवंशिक कारणों (आटोसेमल अप्रभावी जीन) से परऑक्सीडेस और फास्फोलिपिड की अनुपस्थिति विदित हुई है।

इयोसिनरागी कोशिकाओं की विशिष्ट रंजन गुणता उनमें पायी जाने वाली अत्यधिक कैटायनिक प्रोटीन के फलस्वरूप होती हैं। गिनीपिग में इस प्रकार की चार प्रोटीन पहचानी गयी हैं जिनमें मेजर बेसिक प्रोटीन (एम. बी. पी.) प्रमुख है। इसी प्रकार की प्रोटीन मनुष्य, गाय तथा चूहों में भी पहचानी गयी है। मनुष्य की इयोसिनरागी कोशिका की कैटायनिक प्रोटीन को इयोसिनोफिलिक कैटायनिक प्रोटीन (ई. सी. पी.) नाम दिया गया है। प्रोटीनों की इयोसिनरागी कोशिका में स्थिति, मात्रा, क्रियाओं तथा अन्य विशेषताओं पर खोजें हुई हैं। मेजर बेसिक प्रोटीन में दुर्बल जीवाणु नाशक क्रिया पायी गयी है। यह न्यून अथवा कम हिस्टामिन प्रतिरोधी क्रिया युक्त होती है। यह अत्यधिक कोशा विषाक्तता उत्पन्न करती है तथा सिस्टोसोमा मैनसोनी और ट्रिकनेल्ला स्पाइरेलिस नामक परजीवियों के लापा तथा स्तनपायियों की विविध कोशिकाओं (श्वासनली की उपकला कोशा) को क्षतिग्रस्त करती हैं। गौपशुओं की एम. बी. पी. बाल - फैसियोला हिपेटिका को क्षतिग्रस्त करती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य की इ. सी. पी. की विभिन्न मात्रा व समय-निर्भर प्रभाव द्वारा रक्त जमाव विधियों तथा शोथ के देह द्रवी (Humoural) माध्यमकों पर प्रभाव उत्पन्न करती हैं। जिन में कारक XII और XI को सक्रिय करना, कैलीक्रीन व काईनिन को व्युत्पन्न तथा प्लासमिनोजेन का सक्रियकरण करना सम्मिलित है। एम. बी. पी. हिपेरिन का भी उदासीनीकरण करती है। नवीनतम अध्ययनों द्वारा ज्ञात हुआ है कि ई. सी. पी. सीरम, अन्य शरीर द्रवों तथा लार में मुक्त होती है। "रेडियोइम्यूनोऐसे" परीक्षण द्वारा इनकी मात्रा भी ज्ञात की गयी है। दमा तथा त्वकरोगों में ई. सी. पी. की बढ़ी मात्रा ज्ञात हुई है। तीव्र संक्रमणों में रक्त सीरम में इस की बढ़ी मात्रा ज्ञात हुयी है जब कि रक्त में इयोसिनरागी कोशिकायें कम संख्या में थी जो कि इयोसिनरागी कोशिकाओं के संक्रमण या शोध क्षेत्र में विकणीकरण होने का संकेतक थीं। इन तथ्यों की पुष्टि के लिए इयोसिनरागी कोशिकाओं के विकणीकरण होने के बाह्य पात्रीय अध्ययन सम्पन्न किये गये हैं । अक्रिय कणों, प्रतिपिण्ड लेप युक्त लाल रक्त कोशिका या

जीवाणु, प्रतिजन-प्रतिपिण्ड कॉम्पलेक्स तथा मेटाजोआ परजीवियों के सम्पर्क में आने पर इयोसिनरागी कोशिकाओं का विकणीकरण हो जाता है ।यह भी ज्ञात हुआ है कि मास्ट नामक कोशिकायें इयोसिनरागी कोशिकाओं को विकणीकरण करने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं तथा इन पर भी लस कोशिकाओं का नियंत्रण रहता है। ये सभी अत्यन्त जटिल प्रक्रिया श्रृखंला बनाती है।

मुख्य कार्य :

इयोसिनरागी कोशिकाओं के जैव-रसायनिक संगठन में इन के कार्यों का संकेत मिलता है। इयोसिनरागी कोशिकायें अपनी बढ़ी हुई संख्या द्वारा निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करती हैं ।

1) भक्षण कोशिका क्रिया और जीवाणु नाशक प्रभाव
2) परजीवी नाशक प्रभाव
3) प्रत्यूर्जता तथा शोथ-नियंत्रण
4) ऊतक नाशन

भक्षण कोशिका क्रिया तथा जीवाणु नाशक प्रभाव:

इयोसिनरागी कोशिकायें अनेक पदार्थों जैसे कि जीवाणु, माइकाप्लजमाटा, यीस्ट, प्रतिपिण्ड आलेप युक्त लाल रक्त कोशिकायें, इम्यून कॉम्पलेक्सेस, मास्ट कोशिका कणिकाओं और निष्क्रिय कणों इत्यादि का भक्षण करती हैं । यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रत्यूर्जतीय रोगियों की इयोसिनरागी कोशिकायें निम्न किस्म की भक्षण क्रिया युक्त होती हैं। उदासीनरागी कोशिकाओं की तुलना में इयोसिनरागी कोशिकायें सीमित और कम प्रभावी भक्षण कोशिका क्रिया करती हैं अतएव ये जीवाणुओं का कम नाश कर पाती हैं।

परजीवी नाशक प्रभाव :

इयोसिनरागी कोशिकायें एम. बी. पी. पर आक्सीडेस और आक्सीजन मूलक द्वारा प्रभावकारी ढंग से विविध कृमि परजीवियों को क्षतिग्रस्त करती हैं तथा कोशिका माध्यमित प्रतिरक्षा उत्पन्न करती है। इस प्रकार की सूचना अंतः पात्र और बाह्य पात्र (शरीर के अन्दर और प्रयोगशाला के पात्रों में) अध्ययनों द्वारा सिस्टोसोमा मैनसोनी, ट्रिकोनेल्ला स्पाइरेलिस के लार्वा, आंकोसर्का वल्वुलस, रक्तधारा में पाये जानेवाले ट्रिप्नोसोमा क्रूजाई, बाल (अपरिपक्त) फैसियोला हिपेटिका, और ट्रिप्नोसोमा थिलेरिया परजीवियों से प्राप्त हुई हैं । शोध द्वारा ज्ञात हुआ कि इयोसिनरागी और मास्टकोशिका व्युत्पन्न माध्यमित कारक, कम्पलीमेंट के साथ कार्य करके कृमि जनिक परजीवियों की मृत्यु हेतु अत्यधिक प्रभावी प्रक्रिया उत्पन्न करते हैं।

इयोसिनरागी कोशिकाओं को हटाने के पश्चात परजीवी प्रतिरोध कम हो जाता है। यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि उदर और आंत्र में मुक्त रहने या चिपके हुये परजीवी इयोसिनोफिलिया नहीं उत्पन्न करते हैं। अतिइयोसिन रागी रोगियों से प्राप्त इयोसिनरागी कोशिकायें कम परजीवी नाशक प्रभाव रखती हैं। ऐसा संभवत: कोशिका सतह पर पाये जाने वाले ग्राहकों (रिसेप्टरों) के इम्यूनो-कॉमप्लेक्स द्वारा आच्छादित (ब्लॉक) होने के फलस्वरूप होता है।

प्रत्यूर्जतीय और शोथ प्रतिक्रिया नियंत्रण :

इससे सम्बंधित सूचनायें तालिका-1 में दी गयी हैं। अनेक जटिल प्रक्रियाओं द्वारा इयोसिनरागी कोशिकायें प्रत्यूर्जता (तुरन्त प्रकार की अति सुग्राहक प्रतिक्रिया) को नियंत्रण करती हैं। इस क्रिया को सम्पन्न करने के लिये श्रृखंलाबद्ध जटिल क्रियाएं सम्पन्न की जाती है। इन कोशिकाओं में हिस्टामिन प्रतिरोधी तथा हिस्टामिन विषरोधन क्षमता होती है। हाल के अध्ययनों द्वारा विदित हुआ है कि इयोसिनरागी कोशिकाओं में हिस्टामिनेस प्रतिकारक पाया जाता है और यह हिस्टामिन को निष्क्रियकृत करता है। प्रोस्टाग्लांडिन्स (पी. जी. ई और पी. जी. ई2) मास्ट कोशिका का विकणीकरण तथा हिस्टामिन मुक्ति में अवरोध उत्पन्न करता है। इसी प्रकार इयोसिनरागी कोशिकाओं से अत्यधिक मात्रा में मुक्त जिंक भी मास्टकोशिका से हिस्टामिन और सीरोटोनिन मुक्ति निरोध, विम्बाणु सम्मुचयन और वृहद भक्षण कोशिका गमन निषेध उत्पन्न करती है। इयोसिनरागी कोशिकाओं के सत्व में उपस्थित पदार्थ शोफ नियंत्रण गुण रखते हैं । इसी प्रकार अतिसुग्राहकता उत्पन्न करने वाले पदार्थों पर नियंत्रण होता है। इन के अतिरिक्त कई अन्य पदार्थ

भी इयोसिनरागी कोशिकाओं में पाये जाते हैं जो कि प्रत्यूर्जता और शोथ नियंत्रण सम्पन्न करते हैं ।

तालिका - 1 इयोसिनरागी कोशिकाओं के संघटकों के नियंत्रक व अन्य कार्य

कारक अथवा लक्ष्य	इयोसिनरागी कोशिका संघटक की क्रिया
हिस्टामिन	हिस्टामिनेस द्वारा निष्क्रियकृत पी. जी. ई. तथा जिंक द्वारा मुक्ति निरोध
एस आर एस - ए	एराईल सल्फाटेस-बी द्वारा निष्क्रिय
हिपेरिन	मेजर बेसिक प्रोटीन द्वारा उदासीनीकृत
विम्बाणु सक्रिय कारक	फास्फोलिपेस-डी द्वारा विखण्डित।
लाईसोलेसिथिन	लाईसोलेसिथीनेस द्वारा नाश
आई-जी ई-प्रतिजन कॉम्पलेक्स, युक्त मास्ट कोशिका कण	भक्षण कोशिका क्रिया
कृमि परजीवी	मेजर बेसिक प्रोटीन परऑक्सीडेल। और सुपरआक्सीडेस मूलक द्वारा क्षतिग्रस्त
कुछ ऊतक कोशिकायें	एम. बी. पी. द्वारा क्षतिग्रस्त, लाइसोसोमल हाइड्रोलेसेस और सुपर आक्साइड मूलक द्वारा क्षतियां बढ़ायी जाती है

ऊतक नाशन :

हाल के अध्ययनों द्वारा ज्ञात हुआ है कि लम्बे समय तक निरंतर रहने वाली अति इयोसिनोफिलिया अवस्था में एम. बी. पी. नामक मुक्त प्रोटीन कोशिकाओं को क्षतिग्रस्त करती हैं। यह भी खोजा गया है कि शुद्ध इयोसिनरागी कोशिकायें व इनके कणों से प्राप्त एम. बी. पी. प्रति-पिण्ड काम्पलीमेंट-निर्भर कोशिका विषाक्तता उत्पन्न करती हैं तथा विविध प्रकार की कोशिकाओं को क्षतिग्रस्त करती है। एम. बी. पी. द्वारा उत्पन्न कोशिका क्षतियां अन्य इयोसिनोफिलिक कैटायन प्रोटीनों, लाइसोसोमल हाइड्रोलेसेस या सुपर ऑक्साइड मूलकों द्वारा बढ़ायी जाती हैं। इयोसिनोफिल परऑक्सीडेस एच 2 ओ 2 हेलाइड तंत्र ने "माऊस एसाइटिस लिम्फोमा "कोशिकाओं में घातक कोशिका विषाक्तता प्रभाव उत्पन्न किया। मनुष्यों के कई अति-इयोसिनोफिलिया संलक्षणों में हृदय, मस्तिष्क आंत्र आदि में इयोसिनरागी कोशिकायें ऊतकों में क्षतियां उत्पन्न करती पायी गयी हैं। मनुष्यों में हृदय रोग तथा इयोसिनोफिलिया तथा तत् संबंधी बाह्य पात्र परीक्षणों द्वारा इयोसिनरागी कोशिका की क्षारीय प्रोटीन हृदयपेशी विषाक्तता उत्पन्न करती हैं।

इयोसिनरागी कोशिकाओं का शरीर में वितरण

रक्त के अतिरिक्त इयोसिनरागी कोशिकायें शरीर के बाहरी वस्तुओं के प्रवेश द्वारों जैसे कि आंत्र, अधोत्वचा और श्वसन नली की उपकला कोशिकाओं के नीचे के ऊतकों में बहुत अधिक संख्या में होती हैं। इयोसिनरागी कोशिकायें मनुष्य, चूहा तथा गिनीपिग के रक्त तथा ऊतकों में क्रमशः 1: 100, 1:200 या 300 और 1:300 के अनुपात में होती हैं। विभिन्न प्रजाति के पशुओं में इन का वितरण भिन्न होता है जैसे कि मनुष्य की अपेक्षा चूहों की अधोत्वचा में अधिक इयोसिनरागी कोशिकायें पायी जाती हैं । गर्भाशय में ऋतु-चक्र के समय कम संख्या में इयोसिनरागी कोशिकायें पायी जाती है। भूखे पशुओं की आंत्रीय अधोश्लेष्मा में कम इयोसिनरागी कोशिकायें देखी गयी है। अधिक प्रोटीन आहार खानेवाले पशुओं की वक्षीय लसीका वाहिनी में अत्यधिक इयोसिनरागी कोशिकायें पायी जाती हैं। चूहों में अस्थि-मज्जा, त्वचा, आंत तथा फेफड़े में इयोसिनरागी कोशिकाओं की सर्वाधिक सान्द्रता मिलती है। गाय और सुअरों में भी आंतों में सर्वाधिक और अमाशय, लसीका ग्रंथियों, थायमस और नेत्रश्लेष्मला में परिमित संख्या में पायी जाती है। हिस्टामिन की मात्रा और इयोसिनरागी कोशिका का संबंध होता है। यह भी ज्ञात हुआ कि चूहों में इयोसिनरागी कोशिकायें आंत्र द्वारा शरीर से बाहर निकलती है। मानव और विभिन्न प्रजाति के पशुओं में पायी जानेवाली इयोसिनरागी कोशिकाओं की संख्या तालिका-2 में दी गयी है। रक्त में मिलनेवाली इयोसिनरागी कोशिकायें ऊतकों में

और ऊतकों से रक्त में, आदान-प्रदान होती रहती है। किसी भी आकस्मिक अवस्था हेतु आंत, फेफड़ा, त्वचा आदि में इयोसिनरागी कोशिकओं के आगार सुरक्षित रहते हैं। अस्थिमज्जा में इयोसिनरागी कोशिका संश्लेषण में दो से छह दिनों व अस्थि-मज्जा से परिवहन में आने में दो दिनों का समय लगता हैं । आकस्मिक अवस्थाओं में कम समय में भी इयोसिनरागी कोशिकायें व्युत्पन्न होती पायी गयी हैं।

इयोसिनोफिलिया

इयोसिनोफिलिया विभिन्न अवस्थाओं में निदान होती है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि अर्धरात्रि को इयोसिनरागी कोशिका की सर्वाधिक गणना पायी जाती है जब कि दोपहर के समय यह संख्या न्यूनतम होती है। ये कार्टी कोस्टीरायड हार्मोन से ऋणात्मक ढंग से संबंधित होती हैं । इयोसिनरागी कोशिका गणना का उम्र से भी संबंध पाया गया है। रोचक विषय है कि जहां एक ओर ऊँचे पर्वतीय स्थान में तीव्र "अल्पआक्सीयता" से इयोसिनोफीलिया उत्पन्न हुयी वई दूसरी ओर सुअरों की पीयूषग्रंथि निकालने और चूहों में तीव्र मैग्नीशियम न्यूनता से यह अवस्था उत्पन्न की गयी। प्रयोगों द्वारा इम्यून-कॉम्पलेक्स, गामा ग्लोबुलिन लेप युक्त लेटेक्स कणों और परजीवी संक्रमणों द्वारा इयोसिनोफिलिया उत्पन्न की जा सकी है। चिरकारी इयोसिनोफिलिया त्वचा, फेफड़ा, जठर-आंत्र तंत्र, मादा प्रजनन अंगों आदि (जहां मास्टकोशिका बहुल्य होती है) के रोगों में उत्पन्न होती है। यह प्रतिजन आई-जी ई. प्रतिपिण्ड, मास्ट कोशिकाओं या क्षाररागी कोशिकाओं की रुग्ण अवस्थाओं में भी उत्पन्न होती है। इन में कुछ परजीवी संक्रमण, प्रत्यूर्जतीय, श्वसन रोग व त्वक रोग सम्मिलित हैं। दवाओं से उत्पन्न प्रत्यूर्जतीय अवस्थाओं में भी इयोसिनोफिलिया उत्पन्न होती हैं। उपर्युक्त दृष्टांतों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इयोसिनोफिलिया एक रोगावस्था का प्रकटीकरण नहीं है अपितु यह मास्ट नामक कोशिकाओं का अनेक चिरकारी रोग अवस्थाओं में विकणीकरण होने से उत्पन्न होती है। परजीवी रोग तथा प्रत्यूर्जता इसके अच्छे उदाहरण हैं किन्तु स्पष्ट है कि यह मात्र इन अवस्थाओं का ही नैदानिक लक्षण नहीं है।

तालिका - 2 मनुष्य तथा पालतू पशुओं में इयोसिनरागी कोशिकाथें

प्रजाति	औसत प्रति मालि	परिसर प्रति मा. लि	औसत %	परिसर %
मनुष्य	150	0 - 700	3.0	2 – 5
कुत्ता	550	100 - 1,250	4.0	2 – 10
बिल्ली	650	0 - 1,500	5.5	2 – 12
घोड़ा	305	0 - 1,000	3.4	0 – 10
गाय	700	0 - 2,400	0.5	0 – 2
भैंस	592	170 - 1,471	7.0	2 – 14
भेड़	400	0 - 1,000	5.0	0 – 10
बकरी	450	50 - 650	5.0	1 – 8
सुअर	?	?	3.5	0.5 – 11
मुर्गी	400	0 – 1,000	4.0	1.5 – 6.0
चूहा	-	28 – 62	–	0.4 – 1.0

परजीवी रोग तथा इयोसिनोफिलिया :

कई परजीवी संक्रमण मुख्यत: कृमिजनित रोगों की आक्रामक अवस्था में इयोसिनोफिलिया उत्पन्न होती है (तालिका–3)। इस प्रकार की इयोसिनोफिलिया कृमि द्वारा मुक्त प्रोटीन (प्रतिजन) के प्रति संवेदनशीलता के फलस्वरूप जनित होती है तथा आईजी. इ. (IgE) प्रतिपिण्ड भी उत्पन्न होती हैं । कुछ परजीवी भी जिन्हें ऊतकों में पहचानना कठिन होता है इयोसिनोफिलिया उत्पन्न करते हैं तथा इन अवस्थाओं में रक्त में 25,000 इयोसिनोफिल प्रति घन मिमी. होती है। कुछ उदाहरण हैं - स्ट्रांगाइलायडस, ट्रिकनेल्ला, टाक्सोकेरा, फाईलेरिया इत्यादि। ट्रिक्नोसिस में इयोसिनरागी कोशिका गणना सर्वाधिक होती है। सामान्यता प्रोटोजोआ रोगों द्वारा इयोसिनोफिलिया उत्पन्न नहीं होती है और पाचन तंत्र में मुक्तजीवी परजीवी भी यह अवस्था नहीं उत्पन्न करते हैं।

पल्मोनरी इनफिल्ट्रेटस विद इयोसिनोफिलिया:

पल्मानेरी इनफिल्ट्रेटस विद इयोसिनोफिलिया (पी. आई. ई.) एक संलक्षण है जिस में एक्स-रे द्वारा फेफड़ों में शोथ कोशिका अंत: संचरण तथा परिधीय

तालिका - 3 इयोसिनरागी कोशिका बहुलता गणना

	श्वसनीय दमा	ट्रिकनोसिस	ट्राईक्यूरिस ट्राईक्यूरा संक्रमण	पैफीगल फिलीयक	एक्जीमा	पायूदययि कार्सीनामा	परप्यूरा रयूमेटिया
इयोसिनरागी कोशिका %	10	57.5	11	12	19	19	14

रक्त में इयोसिनोफिलिया निदान की जाती है। इसे तीन समूहों में वर्गीकृत किया गया है ।

प्रथम समूह में पी. आई. ई. किसी संलक्षण का प्रमुख भाग होती हैं जैसे कि प्रयूर्जतीय ब्रांको-पल्मोनरी एस्पिर्जिलसमयता, चिरकारी इयोसिनरागी निमोनिया, परजीवी संक्रमण और पॉली-आर्टराइटिस नोडूसा ।

द्वितीय समूह में पी. आई. ई. यदाकदा होती है तथा यह उस रोगावस्था में प्रमुख महत्व रखती है जैसे कि संक्रमण, रसौली, प्रतिरक्षात्मक अवस्थायें। तृतीय पी. आई. ई. के साथ की अन्य अवस्थायें। पशुओं में बिल्ली और कुत्तों में पी. आई. ई. प्राय: होती हैं। पी. आई. ई. की विभिन्न अवस्थाओं में सीरम में आईजी. इ. की मात्रा बढ़ जाती है। ऐसे रोगियों को कार्टीकोस्टीरायडस उपचार से बहुत लाभ पहुंचता है।

हाईपर इयोसिनोफिलिक संलक्षण :

इस समूह के रोगों को संक्षिप्त में एच. ई. एस. नाम से पुकारते हैं। इस अवस्था में असंक्रामक तथा अज्ञात कारणों से ऊतकों में निरन्तर हाईपर-इयोसिनोफिलिया बनी रहती है जिस से उक्त अंग/संस्थान अकर्मणीय हो जाता है। मनुष्यों में इयोसिनरागी आंत्रशोथ, लीफलर का संलक्षण, डिस्सीमिनेटेड इयोसिनरागी रोग तथा इयोसिनरागी ल्यूकीमिया ऐसे रोगों के उदाहरण हैं। अस्थि-मज्जा, मस्तिष्क व हृदय में अत्यधिक इयोसिनरागी कोशिकाओं का अंत:संचरण होता है। बिल्लियों में भी ऐसी एक अवस्था जानी गयी है।

अति-इयोसिनरागी संलक्षण में 50,000 से 1,00,000 इयोसिनोफिल प्रति घन मिमी (परिसर) अथवा अधिक संख्या में मिलती हैं। कई ऊतकों में भी इयोसिनरागी कोशिकाओं का अंत: संचरण पाया जाता है जो कि उक्त अंग के निष्क्रिय होने का प्रतीक होता है जैसे कि रक्ताधिक्य हृदयघात।

सारांश में हम कह सकते हैं कि अन्य कणिकामयी श्वेत रक्त कोशिकाओं की तरह इयोसिनरागी कोशिकायें रक्त तथा कई अंगों में रोगाणु व परजीवी नाशक कोशिका भक्षण आदि

मानव इयोसिनोफिलिया के प्रमुख उदाहरण

भैषज्य प्रत्यूर्जता - आयोडाईडस, एस्पिरिन, सल्फोनामाइडस, नाइट्रोफ्यूरन टॉयन।

परजीवी संक्रमण - हुकवर्म रोम, स्ट्रांगाइलायडियोसिस, टॉक्सोकेरीयेसिस, ट्राईक्यूरियेसिस, ट्रिकनोसिस, फाईलेरियेसिस, सिस्टोसोमियेसिस, इकाइनोकोकोसिस, सिस्टीसर्कोसिस ।

प्रत्यूर्जतीय रोग - हेफीवर, दमा, एंजिया-एडीमा, सीरम सिकनेस, प्रत्यूर्जतीय वैस्कुलाइटिस, एक्जीमा, पेम्फीगस ।

कोलेजन वैस्कुलर रोग - रयूमेटायड संधिशोथ, त्वक मांस पेशीयशोथ, पेरी-आर्टेराइटिस नोडूसा।

दुर्दमता - हाडकिन्स का रोग, कार्सीनोमेटोसिस, मायकोसिस, फंग्याडस (Fungoldes), चिरकारी मायलोजेनस ल्यूकीमिया ।

अति-इयोसिन फिलिक संलक्षण - लीफलर का संलक्षण, लीफलर की इंडोकारडाइटिस, इयोसिनोफिलिक ल्यूकीमिया ।

इसोसिनोपीनिया

मनुष्यों में प्रतिबल (स्ट्रेस) अवस्था में अथवा कार्टीकोस्टीरायड की सुईयां देने से इयोसिनरागी कोशिका न्यूनता (इयोसिनोपीनिया) उत्पन्न हो जाती है। इससे उत्पन्न कोई प्रतिकूल प्रभाव ज्ञात नहीं है। इयोसिनरागी कोशिका गणना कुछ सामान्य पशुओं में शून्य हो सकती है अतएव इस अवस्था का महत्व कम होता है। प्रतिबल, कार्टीकोस्टीरायडस की आन्तरिक मुक्ति अथवा बाहर से देने और तीव्र संक्रमण की अवस्था में इयोसिनोपीनिया उत्पन्न होती है। हाल के अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि इयोसिनोपीनिया जनन की स्वतंत्र प्रक्रिया होती है।

कार्य करती हैं । ये प्रत्यूर्जता व शोथ-नियंत्रण प्रक्रिया में भी भाग लेती हैं। ऐसी क्रियायें सामान्य अवस्था में स्वस्थ्य मनुष्य और पशु में चलती रहती हैं। रोगावस्था में किन्ही विशिष्ट कारकों से इयोसिनरागी कोशिका बहुलता हो जाती है जिसे हमं "इयोसिनोफिलिया" नाम से जानते हैं।बहुत हद तक हम इसे नैदानिक लक्षण तथा रोग निदान में सहायक मान सकते हैं। इसे मात्र परजीवी तथा प्रत्यूर्जता का प्रतीक मानना हमारी अज्ञानता का कारण था क्योंकि वास्तव में यह दशा अनेक रोगों और अवस्थाओ में होती है। अतिइयोसिनरागी अवस्था में कई ज्ञात व अज्ञात कारणों से हजारों-लाखों की संख्या में ये कोशिकायें रक्त व अंगों में पायी जाती हैं तथा उन्हें अकर्मणीय बनाती हैं। ऐसी दशा घातक भी हो सकती है। इयोसिनरागी कोशिकाओं तथा इनकी बहुलता के संबंध में अभी भी कई तथ्यों को प्रकाशित होना शेष है।

"वैज्ञानिक" के स्वामित्व का व्योरा
फार्म IV

1. प्रकाशन स्थल	:	भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्रांबे, बम्बई – 400 085
2. प्रकाशन	:	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम	:	डॉ. अशोक कुमार सूरी
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	धात्विकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085
4. प्रकाशक का नाम	:	डॉ. अशोक कुमार सूरी
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पत्ता	:	धात्विकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085
5. संपादक का नाम	:	डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	तकनीकी भौतिकी एवं प्रारुप इंजीनियरी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085
6. कुल पूंजी के 1% से अधिक के भागीदारों के नाम और पते	:	हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई-400 085

मैं, डॉ. अशोक कुमार सूरी एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सही है।

डॉ. अशोक कुमार सूरी
व्यवस्थापक, "वैज्ञानिक"

भारी धातुओं की विषाक्तता

डॉ. दिनेश मणि, स्वतंत्र लेखक,
ग्राम - मनीपुर, पोस्ट - रामगंज
सुल्तानपुर (उ. प्र.)

आजकल कुछ भारी धातुयें यथा - कैडमियम, क्रोमियम, मरकरी, कॉपर, निकेल, जिंक आदि अपनी विषाक्तता के कारण चर्चा का विषय बनी हुई हैं। इनमें से कुछ तो इतनी अधिक घातक हैं कि यदि दस लाख भाग में इनका एक भाग भी विद्यमान रहे तो ये जानलेवा सिद्ध हो सकती हैं। इन धातुओं का औद्योगिक महत्व होने के कारण रोज नये - नये उद्योगों की स्थापना हो रही है। फलस्वरूप प्रतिदिन अपशिष्ट के रूप में इन धातुओं का ढेर सा लग जाता है और पर्यावरण में इन धातुओं का प्रचुर अंश विष रूप में मिलता रहता है। इस विषय पर एक जानकारी प्रधान विवरण इस लेख मे प्रस्तुत किया गया है।

साधारणतया उपयोग में आनेवाली अधिकतर धातुयें परमाणु संख्या 9 (पोटेशियम) व परमाणु संख्या 84 (पोलोनियम) के मध्य आती हैं। परंतु कैडमियम 48, पारा 80, सीसा 82 व बिस्मथ 83 इत्यादि धातुयें अत्यधिक विषैली हैं तथा इनकी अति सूक्ष्म मात्रा भी पर्यावरण प्रदूषण का कारण हो सकती है। चूंकि ये धातुयें सामान्य धातुओं से अपेक्षाकृत भारी हैं अत: इन्हें भारी धातुयें भी कहा जाता है। पारा, सीसा व कैडमियम धातुओं के विषैलेपन की जानकारी प्राचीन काल से ही थी तथा इनके लवणों का विष के रूप में उपयोग किया जाता था। लेकिन वर्तमान औद्योगिक युग में इन धातुओं का अनेकानेक रूपों में उपयोग होता है। सिस्टिंग 1976 के अनुसार कुछ भारी धातुओं का प्राक्कलित वार्षिक उपयोग स्तर तथा वायु वाहित उत्सर्जन तालिका-1 में दर्शाया गया हैं ।

एक नवीनतम अनुमान के अनुसार 5, 200, 2400, 2500, तथा 3100 लाख टन क्रमश: कैडमियम, निकेल, लैड, जिंक तथा कॉपर अब तक खुदाई (माइनिंग) के द्वारा निकाले जा चुके हैं। इन धातुओं के अपशिष्ट अन्तत: इसी जीवमंडल में व्यर्थ पदार्थ के रूप में फैंके जा चुके हैं। विभिन्न उद्योगों के उच्छिष्ठ स्राव के द्वारा भी ये धातुयें पर्यावरण में आती हैं । (तालिका - 2) ।

तालिका-1 कुछ भारी धातुओं का प्राक्कलित वार्षिक उपयोग स्तर तथा वायुवाहित उत्सर्जन (सिल्टिंग, 1987)

भारी धातु	उपयोग स्तर (टन)	प्राक्कलित वार्षिक वायुवाहित उत्सर्जन (टन)
कॉपर Cu	30,00,000	14,000
जिंक (Zn)	18,00,000	15,000
लैड (Pb)	15,00,000	9,000
मैगनीज (Mn)	12,00,000	19,000
क्रोमियम (Cr)	5,00,000	12,000
आर्सेनिक (As)	3,00,000	9,500
निकेल (Ni)	1,90,000	6,000
टिन (Sn)	82,000	370
मोलिबिडनम (Mo)	28,000	900
कैडमियम (Cd)	6,000	300
मरकरी (Hg)	2,000	500
सेलेनियम (Se)	500	900
बेरीलियम (Be)	350	150

तालिका– 2 कुछ प्रमुख धातुओं के स्रोत

धातु	स्रोत
कैडमियम	इलेक्ट्रोप्लेटिंग, जिंक उत्पादन, कैडमियम सेल उद्योग ।
क्रोमियम	चमड़ा शोधन, ऐल्युमिनियम इलेक्ट्रोप्लेटिंग, रसायन तथा उर्वरक उद्योग ।
सीसा	बैटरी, बाल बियरिंग, सोल्डरिंग, केबिल बारूद, प्रिंटिंग व पेंट उद्योग ।
पारा	बैटरी, ट्यूबलाइट, मरकरी लेप, पेंट उपकरण (बेरोमीटर, मेनोमीटर), उत्प्रेरक, कृषि रसायन (आरगेनोमरक्यूरल) तथा कागज उद्योग।
निकेल	इलेक्ट्रोप्लेटिंग उद्योग ।
जिंक	बैटरी व कॉस्मेटिक उद्योग ।

इन अपशिष्टों के हवा, नदी, तथा मिट्टी आदि में पहुँचने से क्रमशः वायु, जल तथा मिट्टी के धात्विक प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जल, वायु तथा मिट्टी ही नहीं अपितु इससे अब खाद्य सामग्री भी प्रदूषित होने लगी है।

जापान में मिनीमाता नामक स्थान पर हुई एक दुर्घटना ने सारे विश्व का ध्यान धातु प्रदूषण की ओर आकर्षित किया। इस दुर्घटना में 56 लोगों की मृत्यु हुई थी और काफी लोग विकलांग हो गये थे। माताओं के गर्भ में पल रहे बच्चे भी इस दुर्घटना से प्रभावित हुये न बच सके । यह दुर्घटना एक रासायनिक कारखाने की वजह से हुई थी जो अपने अपशिष्ट पदार्थों को मिनीमाता की खाड़ी में फैंक देता था । इन पदार्थों में पारा के लवण मुख्य थे। इससे खाड़ी का पानी प्रदूषित हो गया था । पारा के लवणों के कारण खाड़ी की मछलियाँ विषाक्त हो गयीं थीं । इनके खाने से यह विष मनुष्यों के शरीर में भी पहँच गया था। उस समय खाड़ी के जल में पारा की मात्रा 1.6 से 3.6 पी पी बी (अंश/बिलियन, बिलियन = 10^8) थी जबकि सामान्य दिनों में पारा का स्तर केवल 0.1 पी पी बी रहता था । वास्तव में अधिकांश उद्योगों (जैसे प्लास्टिक, कागज, रंग - पालिश, कीटनाशी उद्योग आदि) में पारे के कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिकों का उपयोग किया जाता है, जिन्हें अन्त में बेकार पानी के साथ समुद्र या नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। जब मछलियाँ इस जल में जाती है तो वे अधिक पारा युक्त चारा खाती हैं। जिस मछली में प्रति किलो भार पर 1 मिग्रा. से अधिक पारा रहता है वह खाने के लायक नहीं रहती।

वैज्ञानिक रिपोर्ट के अनुसार यदि प्रतिदिन लगातार कई सप्ताह तक ऐसी वायु मे सांस ली जाय जिसमें प्रति घनमीटर 0.01 मिग्रा. पारा हो तो सिर दर्द, थकान तथा मस्तिष्क शिथिलता का अनुभव होने लगेगा । अनुमान है कि मनुष्य प्रतिदिन भोजन से 0.005 मिग्रा. पारा ग्रहण करता है किन्तु यह भी ध्यान रहे कि प्रति सप्ताह 0.3 मिग्रा. से अधिक पारा ग्रहण नहीं किया जा सकता।

विकासशील देशों में प्रतिवर्ष बीजों को उपचारित करने के लिये हजारों टन पारा जीवनाशियों का प्रयोग होता है जिसके कारण असावधान कृषकों की मृत्यु होती रहती है। कभी-कभी उपचारित बीजों को चिड़ियां चुग लेती हैं तो वे भी बड़ी संख्या में मरने लगती हैं। गो - पशु इसके प्रति सर्वाधिक संवेदनशील होते हैं ।जूं मारने की घरेलू दवाओं तथा कैलोमल के प्रयोग के प्रयोग से पशुओं की मृत्यु तक हो सकती है। इसकी विषाक्तता से लार गिरना, वमन, खाने में अरुचि तथा पक्षाघात के लक्षण देखे जाते हैं।

कैडमियम भी एक विषैली भारी धातु है ।यह खनन, धातु कर्म, रसायन उद्योग, सुपर फास्फेट उर्वरक तथा कैडमियम युक्त जीवनाशी रसायनों के माध्यम से पर्यावरण में प्रवेश पाता है। चाहे कपड़ा धोने की मशीन हो या कि कुकर अथवा फ्रिज हो, सभी में कैडमियम प्लेटिंग रहती है। अनुमान है कि मनुष्य के आहार के साथ प्रतिदिन 40 माइक्रोग्राम कैडमियम प्रविष्ट होता है।जापान में "इटाइ इटाइ" रोग कैडमियम की ही विषाक्तता से होता है। हमारे देश में ही कैडमियम बैटरी बनाने वाले उद्योगों में प्रदूषण के कारण 4000 लोगों की मृत्यु हो चुकी

है।

मनुष्य में कैडमियम की कुल मात्रा 30 मिग्रा. होती है। जिसका $^1/_2$ अंश वृक्कों में और $^1/_6$ अंश यकृत में रहता है। प्रदूषण की स्थिति में यकृत में कैडमियम की मात्रा बढ़ती जाती है किन्तु वृक्कों में इसकी मात्रा आयु के अनुसार बढती है। इसकी विषाक्तता से पथरी पड़ जाती है। इसका विषैला प्रभाव इन्जाइम के SH (सल्फिड्रिल समूह) पर पड़ता है। सिगरेट पीने वालों के शरीर में कैडमियम की अधिक मात्रा पायी गयी है। इसकी विषाक्तता से तनाव तथा हृदय रोग बढ़ते हैं ।

लैड या सीसा एक संचयी विष है। दैनिक मात्रा थोड़ी होने पर भी लम्बे समय में सीसे का काफी संचय हो जाता है। यह पात्रों, मिट्टी और पानी के पाइपों से पर्यावरण में आता है। अनुमान है कि प्रतिदिन भोजन के द्वारा मनुष्य को 0.2 मिग्रा. सीसा मिलता है। जल के माध्यम से प्रति लीटर 0.1 मिग्रा. सीसा शरीर के भीतर पहुँचता है। मृदु तथा अम्लीय जल में यह मात्रा अधिक हो सकती है।विश्व स्वास्थ्य संगठन की 1971 की एक रिपोर्ट के आधारपर पीने के पानी में भारी धातुओं की अधिकतम अनुमेय सांद्रता बतायी गयी है जिसे तालिका-3 में दर्शाया गया है।

तालिका — 3 पीने के पानी मे भारी धातुओं की अधिकतम अनुमेय सान्द्रता

भारी धातु	*अधिकतम अनुमेय सान्द्रता मिग्रा/लीटर*
मरकरी	0.001
कैडमियम	0.01
सेलीनियम	0.01
आर्सेनिक	0.05
क्रोमियम	0.05
कॉपर	0.05
मैगनीज	0.05
लैड	0.1
आयरन	0.1
जिंक	5.0

स्रोत : विश्व स्वास्थ्य संगठन (1971)

1977 में आन्ध्र प्रदेश के गुन्टूर जिले के मलप्पाडु नामक ग्राम के मवेशी इस बीमारी से ग्रसित हुये थे। मवेशियों को यह बीमारी सीसा मिले रसायनों से प्रदूषित जल पीने के कारण हुई थी। हुआ यह था कि उपर्युक्त ग्राम के निकट की नदी में एक रासायनिक कारखाने द्वारा उक्त रसायन छोड़ दिये जाते थे और मवेशी इस नदी का जल पिया करते थे। फलतः कई पशुओं की जानें चली गयीं ।

शहरों में वाहनों के पेट्रोल से निकला सीसा वायुमण्डल में व्याप्त रहता है। इंजनों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिये पेट्रोल में लैड के रसायन (ट्रेट्रा इथाइल लैड) मिला दिये जाते हैं। यह सीसा श्वास द्वारा शरीर में प्रविष्ट होता रहता है। सीसे की विषाक्तता से उल्टी, अरक्तता, गठिया आदि रोग हो जाते हैं। प्राचीन रोम के निवासी सीसा से कलई किये गये बर्तनों का अधिक उपयोग करते थे। इसके कारण उनके शरीर में सीसा की विषाक्तता के फलस्वरूप कम आयु में उनकी मृत्यु हो जाती थी।

ऐल्युमिनियम का सर्वाधिक नित्य प्रति व्यवहार में आने वाले बर्तनों में होता है। यदि पीने के पानी में फ्लोराइड मिला हो तो ऐसे बर्तनों में से पर्याप्त ऐल्युमिनियम शरीर के भीतर प्रविष्ट हो सकता है। इसकी अधिकता से मस्तिष्क कोशिकाओं को क्षति पहुँचती है।

क्रोमियम, निकेल धातुओं से संबन्धित कारखानों में काम करने वाले मनुष्यों में चर्म तथा श्वास नली के कैंसर होते देखे गये हैं।

आर्सेनिक एक संचयी विष है। साथ ही यह प्रोटोप्लाज्मिक (जीवद्रव्यीय) विष है। यह इन्जाइमों के - SH समूहों को अवरूद्ध करता है। आर्सेनिक का शोषण चमड़ी तथा फेफड़ो से होता है। यह कैन्सरजनक माना जाता है। यह जीवनाशी रसायनों के प्रयोग से पर्यावरण में आता है।

शेष पृष्ठ 44 पर

टिप्पणियां

1. कैसे होता है प्रकृति में संम्प्रेषण

"बन्द नहीं अब भी चलते हैं, नियति वटी के कार्यकलाप;
पर कितने एकांत भाव से, कितने शांत और चुपचाप।"

('पंचवटी'/मैथिलीशरण गुप्त)

प्रकृति ने हमें अभिव्यक्ति की अद्‌भुत क्षमता प्रदान की है। भाषा के माध्यम से हम अपने भावों, विचारों, अनुभूतियों आदि को व्यक्त कर लेते हैं। अन्य प्राणियों में वाचिक सम्प्रेषण की क्षमता न के बराबर पायी जाती हैं। पेड़-पौधों सहित अन्य जीवधारी अपने दैनंदिन संघर्ष में सम्प्रेषण की अन्य विधियाँ अपनाते हैं। ये ऐसी भाषाएं हैं जिन्हें हम नहीं सुन सकते। संदेशों का वहन करनेवाले माध्यमों के अनुसार प्रकृति की इन सम्प्रेषणविधियों को चार वर्गों में रखा जा सकता है — रासायनिक सम्प्रेषण, वैद्युतचुम्बकीय सम्प्रेषण, चुम्बकीय व वैद्युत सम्प्रेषण और यांत्रिक सम्प्रेषण।

रासायनिक सम्प्रेषण में अणुओं के सहारे प्रकृति अधिकतम सूचना एकत्र करती है। जीवाणुओं से लेकर मानव तक लगभग सभी जीवधारी पर्यावरण से रासायनिक संदेश प्राप्त करते रहते हैं। स्वयं अपने संदेश भेजने में भी इन्हीं अणुओं का प्रयोग करते हैं।

जीवाणुओं पर हुए अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि ये सामान्यत: पोषक अणुओं की ओर तैरते हैं और विषैले अणुओं से दूर भागते हैं। रसायनों की ओर या उनसे दूर भागने की विशेषता अन्य सूक्ष्मजीवों में भी पायी जाती है। उदाहरण के रूप में लिसलिसी मिट्टी में उगनेवाली फफूँद को लिया जा सकता है। देखने में अमीबा की तरह लगनेवाले ये जीव एककोशिकीय होते हैं और जीवाणुओं पर निर्भर रहकर भूमि में ही निवास करते हैं। भोजन की कमी होने पर ये कुछ विशेष अणुओं को स्रवित करने लगते हैं जिन्हें पड़ोसी फफूँदियाँ ग्रहण कर लेती हैं। इन आण्विक संदेशों को ग्रहण करने के बाद फफूँदियाँ एकत्र होकर घोंघा जैसा एक पिंड बनाती हैं जो एक बहुकोशिकीय जीव होता है।

सम्प्रेषण की यही विधि कीटों में भी पायी जाती है। दीमकों की बाँबी में उनके बीच होने वाला सम्प्रेषण रासायनिक संकेतों के आदान - प्रदान पर ही आधारित होता है। इतना ही नहीं, घुसपैठियों से अपनी सुरक्षा के लिए वे कई विषैले और जलन पैदा करनेवाले रसायनों को स्रवित करती हैं। कुछ पतंगे भी रासायनिक संदेश ग्रहण कर लेते हैं। इनकी श्रंगिकाएं इस प्रक्रिया में एन्टीना का काम करती हैं।

पशुओं में गन्ध लेने की प्रक्रिया वातावरण के रासायनिक संदेशवाहक अणुओं से जान-पहचान करने की ही उनकी व्यवहारगत भंगिमा होती है। हमारे शरीर के विभिन्न अंगों में पारस्परिक सम्प्रेषण हार्मोन नामक विशेष रसायनों द्वारा ही सम्पन्न होता है।

हाल ही में हुए अनुसंधानों से पौधों में भी सम्प्रेषण के साक्ष्य मिले हैं। कीटों द्वारा आक्रमण होने पर कुछ पौधे अपनी पत्तियों में कुछ विषैले रसायनों की मात्रा बढ़ाकर उनका प्रतिकार करते हैं। ये रसायन कीट जनसंख्या की नियंत्रित भी करते हैं।

वैद्युतचुम्बकीय सम्प्रेषण में इन विकिरण (प्रकाश) को ग्रहणकर उसकी प्रतिक्रिया जताना ही वैद्युत चुम्बकीय सम्प्रेषण कहलाता है। अधिकांश जीवधारी किसी न किसी रूप में इस विकिरण के संकेतों का उत्तर अवश्य देते हैं। सूक्ष्मदर्शी से दिखाई पड़ने वाले कुछ जीवों जैसे रॉटिफर में आँखें पायी जाती हैं। इनमें से कुछ में लेन्स भी होते हैं। जन्तुजगत में सबसे बड़ी आँखें दैत्याकार स्क्विड में पायी जाती है। इसकी आँखों का व्यास लगभग 25 सेमी. होता है।

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि सम्प्रेषण के लिए प्रयुक्त तरंग दैर्घ्य वैद्युतचुम्बकीय विकिरण के केवल दृश्यभाग तक ही सीमित नही रहती बल्कि दोनों छोरों — पराबैंगनी और अवरक्त की ओर फैली रहती है। रैटल, अजगर आदि सर्प अपनी

आँखों के नीचे स्थित गर्त नामक कुछ विशेष अंगों की सहायता से अवरक्त विकिरण भी संसूचित कर लेते हैं। इस अद्‌भुत क्षमता के कारण वे रात्रि में समतापी शिकार खोज लेते हैं क्योंकि समतापी प्राणियों से निकलनेवाली ऊष्मा अवरक्त विकिरण के रूप में ही होती है।

यह जानना रोचक है कि मानव और संभवत: अधिकांश जन्तु भी अवरक्त विकिरण संसूचित कर लेते हैं यद्यपि इनमें उपर्युक्त सर्पों की भाँति विशेष अंग नही पाये जाते। उदाहरणार्थ, जब कोई जलती आग के सामने बैठता है तो शरीर तक पहुँचनेवाली अधिकांश ऊष्मा आग द्वारा उत्सर्जित अवरक्त विकिरण के रूप में ही आती है। मधुमक्खियों में वैद्युतचुम्बकीय विकिरण के पराबैंगनी और दृश्य क्षेत्रों में देख पाने की आश्चर्यजनक क्षमता पायी जाती है।

अपना स्वयं का प्रकाश उत्पन्न कर लेने की अद्‌भुत क्षमता प्रकृति ने कुछ गिने-चुने प्राणियों को ही दी है। इनमें शामिल हैं समुद्री प्लवक, कवक, जुगनू और केचुओं की कुछ प्रजातियाँ। जुगनू अपने साथी की खोज के लिए प्रकाश संकेत भेजते हैं। नर जुगनू उड़ते समय प्रकाश छोड़ता है और मादा भूमि से अपने प्रकाश द्वारा उसका उत्तर देती है। यदि कोई मादा किसी नर को आकृष्ट कर भूमि पर लाने में सफल हो जाती है तो लैंगिक सम्पर्क हो जात है। जुगनू की प्रत्येक प्रजाति में संकेत भेजने के पृथक प्रतिमान पाये जाते हैं। कुछ प्रजातियों की मांसाहारी मादा अन्य प्रजातियों की मादा के संकेतों की नकल करके उन प्रजातियों के नरों को आकृष्ट कर लेती है और उन्हें अपना शिकार बना लेती है। प्रकाश संकेत भेजने का गुण गहरे समुद्र की मछलियों जैसे ऐंगलर, हैचेट आदि में भी पाया जाता है। इनके विशेष अंगों में रहनेवाले प्रदीप जीवाणुओं के कारण ही ऐसा संभव हो पाता है। ये विशेष जीवाणु अविरल रूप से प्रकाश उत्सर्जित करते रहते हैं। कुछ मछलियों में विशेष युक्तियाँ भी विकसित पायी जाती हैं। इनकी त्वचा के परिवर्तनशील मोड़ प्रकाश छोड़ने और बन्द करने के काम आते हैं।

चुम्बकीय व वैद्युत सम्प्रेषण में कई जीवजन्तु चुम्बकीय क्षेत्रों के प्रति संवेदनशील होते हैं। चलने-फिरने में भी वे पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का उपयोग करते हैं। कुछ जीवों के विशेष अंगों में चुम्बकीय पदार्थों के अंश विद्यमान पाये गये हैं। इनमें शामिल हैं जीवाणुओं की कुछ प्रजातियाँ, मधुमक्खियाँ, कबूतर और डाल्फिन। चुम्बकीय क्षेत्र के सहारे चलने - फिरने का सत्यापन अभी तक एक विशेष प्रकार के जीवाणु में ही हो सका है। 'मैग्नेटोटेक्टिक बैक्टीरिया' नामक यह जीवाणु 1975 में खोजा गया था।ताजे पानी और समुद्री तलछट में पाये जाने वाले इस जीव में चुम्बक के गुण वाले मैग्नेटाइट कण पाये जाते हैं। ये कण ही कुतुबनुमा की तरह पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में उसे अनुरेखित - निर्देशित करते रहते हैं।

कुछ मछलियाँ जैसे शार्क और रे वैद्युत क्षेत्रों के साथ अनुकूलन बनाये रखती हैं। चलने - फिरने और शिकार खोजने के लिए अन्य युक्तियों के अलावा इस विधि को भी अपनाती हैं। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि दो इलेक्ट्रोडों के बीच वैद्युत धारा प्रवाहित करने पर शार्क इलेक्ट्रोड पर आक्रमण कर देती है। वैज्ञानिक बताते हैं कि भूकम्प से पहले वायु की स्थिर विद्युत में वृद्धि और आसन्न भूकम्प को भाँप लेने की जन्तुओं की क्षमता के बीच एक संबंध रहता है। इस परिकल्पना के अनुसार भूकम्प आने से पहले बढ़ी हुई स्थिर विद्युत् जन्तुओं में एक प्रकार का आवेग उत्पन्न कर देती है जिससे वे अकस्मात भयभीत हो जाते हैं।

यांत्रिक सम्प्रेषण में कुछ जीवधारी सम्प्रेषण की यांत्रिक विधियाँ अपनाते हैं। उदाहरणार्थ चमगादड़ और डॉल्फिन पराश्रव्य ध्वनियाँ उत्पन्न करते हैं और वातावरण से लौट कर आने वाली प्रतिध्वनियाँ भी सुन लेते हैं। इस तरह ये प्राणी रास्ते की बाधाओं को दूर से ही भाँप लेते हैं और उनकी अवस्थिति का भी अनुमान लगा लेते हैं। इसी क्षमता के फलस्वरूप चमगादड़ वायु में ही उड़ते हुए कीटों को पकड़ लेते हैं।

कुछ पतंगों में कान सदृश संरचनाएं पायी जाती हैं। इन्हीं की सहायता से ये चमगादड़ों द्वारा

उत्पन्न ध्वनियाँ सुन लेते हैं। जब इन्हें किसी चमगादड़ के अपने समीप आने की भनक लगती है तो कई प्रकार की युक्तियाँ अपनाकर बच निकलते हैं।

कुछ मकड़ियों में ऐसी ध्वनियाँ उत्पन्न करने की क्षमता होती है जिसका प्रयोग लैंगिक सम्पर्क के दौरान सम्प्रेषण में होता हैं। उष्णकटिबन्धीय मकड़ियां परस्पर समीप आने के लिए सम्प्रेषण की एक विचित्र विधि अपनाती हैं। ये मकड़ियां केले और एगेव के पेड़ों पर रहती हैं। नर और मादा मकड़ियों द्वारा उत्पन्न ध्वनियों से पत्तियों में कम्पन होने लगते हैं। नर मकड़ी मादा द्वारा प्रेषित कम्पन का अनुसरण कर अन्य पत्तियों पर मादा को खोज लेती है। खतरों को तुरन्त भाँपकर बच निकलने के लिए तिलचट्टे बहुचर्चित हैं। सुविकसित टाँगों के कारण भागने में इन्हें आसानी रहती है। वायु की हलचल को भी भाँप लेने की विलक्षण क्षमता इनमें पायी जाती हैं। इनके शरीर के पिछले भाग में स्थित दो उपांगों की बाल सदृश संरचनाएं इनके लिए एन्टीना का काम करती हैं। जब कोई तिलचट्टे को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाता है तो वायु में उत्पन्न हलचल की भनक लगते ही वह तेजी से भाग खड़ा होता है।

उपर्युक्त कुछ उदाहरण प्रकृति की विभिन्न सम्प्रेषण विधियों की एक झलक मात्र हैं लेकिन यह स्पष्ट है कि प्रकृति की यह सम्प्रेषणकारी शक्ति चमत्कृत करने वाली है।

कृष्णप्रकाश त्रिपाठी
14, सर पी. सी. बॅनर्जी हॉस्टल,
इलाहाबाद 211 002

◆◆◆

2. क्या भौतिक विज्ञान भी आत्मा और ईश्वर की सत्ता को मानेगा?

आज के भौतिक विज्ञान ने अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। हम भौतिक वैज्ञानिकों के परिश्रम की प्रशंसा करते हैं, कि उनके प्रयासों से आज मानव को मशीन युग में अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं और अनेक कष्ट दूर हुए हैं। यद्यपि यह सर्वसम्मत बात है कि प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति की प्रत्येक चेष्टा का उद्देश्य 'दुःख से छूटना और सुख को प्राप्त करना' होता है। आधुनिक विज्ञान के प्रयास (नये- नये आविष्कार) भी इस नियम का अपवाद नहीं हैं। अर्थात् वैज्ञानिकों के प्रयत्न भी मानव-समाज को 'दुःख से छुड़ाने और सुख की प्राप्ति कराने के लिये' ही हैं। फिर भी आज भौतिक विज्ञान इतना उन्नत हो जाने पर भी, क्या कारण है कि मानव दुःखों से पूर्णतया छूट नहीं पा रहा और पूर्ण और स्थाई सुख को प्राप्त नहीं कर पा रहा? हमें इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करना होगा।

हमारी दृष्टि में इसका कारण है - वैज्ञानिकों द्वारा 'आत्मा' और 'ईश्वर' नाम के द्रव्यों की सत्ता को स्वीकार न करना और इन द्रव्यों के गुण-कर्म-स्वभाव को न जानना। 'भौतिक वैज्ञानिकों की दृष्टि में जगत का मूल तत्त्व ऊर्जा माना जाता है। उसी से आगे चलकर क्वार्क्स, फिर इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रॉन आदि बनते हैं और सम्पूर्ण जगत का विस्तार हो जाता है।

हम यहाँ वैज्ञानिकों से कुछ प्रश्न करना चाहेंगे। इन प्रश्नों का उद्देश्य है — सत्य की खोज करना (जो कि विज्ञान का भी उद्देश्य है) । परन्तु प्रश्न उठाने से पूर्व कुछ उन नियमों का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है, जिन्हें भौतिक विज्ञान आज भी स्वीकार करता है। जैसे कि —

1) इस संसार का मूल तत्त्व ऊर्जा है जो कि जड़ (Non Intelleect) है।
2) मूल तत्त्वों की विशेषताओं में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यदि परिवर्तन हो जाये, तो उन्हें मूल तत्त्व नहीं माना जा सकेगा ।
3) भौतिक विज्ञान केवल उन्हीं तत्त्वों की सत्ता को स्वीकार करता है, जिन्हें आँखों से या यन्त्रों से देखा जा सके अथवा बुद्धि से स्वीकार किया जा सके ।
4) अभाव (Absence) से भाव (presence) हीं हो सकता। इत्यादि।

उपर्युक्त नियम प्रो. सत्यदेव वर्मा ने, वैज्ञानिकों की ओर से स्वीकार किये (10 अगस्त 1992,

काशीराम भवन, अहमदाबाद)। प्रो. वर्मा गुजरात विश्व विद्यालय के एक प्रबुद्ध वैज्ञानिक हैं और विश्वविद्यालय में भौतिकी विभाग के अध्यक्ष तथा विज्ञान विभाग के निदेशक हैं।

अब हम सत्य की खोज के उद्देश्य से भौतिक वैज्ञानिकों के समक्ष कुछ प्रश्न उपस्थित करते हैं।

प्रश्न - 1

भौतिक विज्ञान उन तत्त्वों की सत्ता को भी स्वीकार करता है, जो बुद्धि से जाने जा सकते हैं, भले ही आँखों या यन्त्रों से न भी देखे जा सके। जैसे कि - 'ऊर्जा, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति' आदि। 'क्वार्क्स' नामक सूक्ष्म द्रव्य भी अभी तक किन्हीं भी यन्त्रों के माध्यम से देखे नहीं जा सके हैं। फिर भी विज्ञान इनकी सत्ता को स्वीकार करता है। अर्थात् पत्थर आदि भारी पदार्थ पृथ्वी की ओर आकर्षित होते हैं। इस 'आकर्षण' रूपी कार्य के आधार पर पृथ्वी में 'गुरूत्वाकर्षण' के नाम से एक शक्ति की सत्ता स्वीकार की गई। ठीक इसी प्रकार से हम-आप सब सोचते-विचारते हैं। अनेक प्रकार की विद्याओं को सीख कर विद्वान हो जाते हैं। तो यहाँ प्रश्न होता है कि - इन विद्याओं को सीखने वाला द्रव्य कौन-सा है? भौतिक विज्ञान के अनुसार तो मूल तत्त्व ज्ञान से रहित है। और मूल तत्त्वों की विशेषताओं में परिवर्तन भी नहीं हो सकता, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि जड़ (ज्ञान रहित) मूल तत्त्व से विद्याओं को सीखने वाले चेतन (ज्ञान सहित) द्रव्य की उत्पत्ति हो गई। जब हमें विद्याओं को सीखनेवाला, सोचने-समझने वाला तत्त्व व्यवहार में मनुष्य आदि के रूप में उपलब्ध है, तो एक चेतन (ज्ञानवान्) तत्त्व भी हमें 'मूल तत्त्व' के रूप में अवश्य ही स्वीकार करना होगा जो कि विचार पूर्वक कार्य करता है। मोटर, रेल, घर आदि बनाता है और अपने अनेक प्रयोजन सिद्ध करता है। 'ऊर्जा' नामक मूलतत्त्व में ऐसी क्षमता सिद्ध नहीं होती और न ही वैज्ञानिक ऊर्जा में ऐसी क्षमता मानने को तैयार हैं। हम इस ऊर्जा से भिन्न चेतन मूल तत्त्व को 'आत्मा' कहते हैं।

प्रश्न - 2

इसी प्रकार से ब्रह्माण्ड में हम देखते हैं, तो सभी जगह (परमाणु में, सौरमण्डल आदि में) हमें व्यवस्था दिखाई देती है। ब्रह्माण्ड का मूल तत्त्व 'ऊर्जा' तो जड़ (ज्ञान से रहित) है। वह तो ऐसी व्यवस्था और नियम बना नहीं सकता। इन नियमों और व्यवस्थित रचनाओं तथा रासायनिक द्रव्यों (हीलियम, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन आदि) के रूप में व्यवस्थित कर सके। यदि इस कार्य के लिये हम यह सोचें कि मनुष्य के रूप में उपलब्ध ज्ञानवान पदार्थ 'आत्मा' ने यह व्यवस्था बनाई होगी, तो यह भी ठीक नहीं है। क्यों किसी भी मनुष्य का ऐसा सामर्थ्य नहीं दीखता, जो अरबों आकाश-गंगाओं (Galaxies) तक फैले विशाल ब्रह्माण्ड की व्यवस्था कर सके। परिणाम स्वरूप हमें एक ऐसे अन्य चेतन मूल तत्त्व की सत्ता माननी होगी, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना और व्यवस्था कर सके। ऐसे शक्तिशाली मूल तत्त्व को हम 'ईश्वर' कहते हैं। इसकी सत्ता को स्वीकार किये बिना सृष्टि की रचना का प्रश्न सुलझ नहीं पाएगा ।

कोई भी जड़ वस्तु स्वयं ज्ञानपूर्वक गतिशील होकर किसी कार्य पदार्थ के रूप में उपस्थित नहीं हो जाती । जैसे कि वृक्ष से लकड़ी के टुकड़े स्वयं कटकर और बुद्धिपूर्वक जुड़कर मेज-कुर्सी के रूप में नही आ जाते। उन्हें मेज़-कुर्सी के रूप में लाने के लिये चेतन कर्ता (बढ़ई) की आवश्यकता होती है। ठीक इसी प्रकार से इस ब्रह्माण्ड के मूल तत्त्व ऊर्जा और क्वार्क्स आदि ज्ञानशून्य होने से स्वयं बुद्धिपूर्वक मिलकर इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन आदि के रूप में उपस्थित नहीं हो सकते । उनको इस स्थिति में लाने के लिये भी बढ़ई के समान एक ज्ञानवान् तत्त्व की आवश्यकता होगी। और वह भी एक मूल तत्त्व ही होगा। क्योंकि उसकी विशेषताएँ ऊर्जा और आत्मा से भिन्न हैं। उसी मूल तत्त्व को हम 'ईश्वर' कहते हैं । यदि ईश्वर की सत्ता को न माना जाये, तो हमारा प्रश्न है कि - ऊर्जा से क्वार्क्स तथा इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन आदि पदार्थ किसने बनाये? जबकि सभी वैज्ञानिक मानते हैं कि - सृष्टि की रचना बुद्धिपूर्वक है और ऊर्जा आदि मूल तत्त्व बुद्धि से शून्य (ज्ञान रहित) हैं।

विश्व की समस्याओं को सुलझाने के लिये हमें

विश्व के सम्पूर्ण तत्त्वों का अध्ययन करना ही होगा। विश्व के सम्पूर्ण तत्त्व उपर्युक्त विवेचन के अनुसार तीन ही सिद्ध होते हैं। इन तीनों का विस्तृत विवरण वेद और वैदिक साहित्य - (भारतीय वैदिक दर्शनों एवं उपनिषद् आदि ग्रन्थों) में उपलब्ध होता है। इन ग्रन्थों में इन तीन तत्त्वों के नाम हैं - 'ईश्वर, आत्मा और प्रकृति'। वैज्ञानिक लोग भौतिक विज्ञान में केवल 'प्रकृति' नामक एक ही मूल तत्त्व का अध्ययन करते हैं। परन्तु शेष दो तत्त्वों की उपेक्षा कर देने से हम यह समझते हैं कि जीवन की सभी समस्याओं का समाधान नहीं हो पाएगा। मनुष्य की जो स्वाभाविक इच्छा है कि - "मैं दु:खों से पूर्णतया छूटकर स्थाई और पूर्ण सुख की प्राप्ति कर सकूँ", इसकी पूर्ति के लिये हमें अवश्य ही 'ईश्वर और आत्मा ' के बारे में जानना होगा। क्या भौतिक वैज्ञानिक लोग इन दो तत्त्वों के संबंध में जानने के लिये भारतीय वैदिक साहित्य का अध्ययन करेंगे? और क्या संसार के अन्य लोगों को भी वैदिक साहित्य का अध्ययन करने का परामर्श देंगे? ऐसा करने से मानवता का बहुत बड़ा हित होगा । आशा है, वैज्ञानिक लोग उक्त प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करेंगे ।

विवेक भूषण दर्शनाचार्य
दर्शन योग महाविद्यालय,
आर्यवन विकास क्षेत्र, रोजड़,
सागपूर, साबरकांठा—383 307 (गुज.)

◆◆◆

3. जीवन का पूर्व प्रारूप (को-एसरवेट)

पूर्व रशिया के प्रख्यात जीव-वैज्ञानिक डॉ. ए. आई.ओपेरिन एवं ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. जे. बी. एस. हाल्डेन ने सन् 1932 में करीब-करीब एक साथ जीवन की उत्पत्ति के संबंध में एक प्रादर्श (मॉडल) प्रस्तुत किया था। इस प्रादर्श से "जीवन की उत्पत्ति" की वैज्ञानिक सोच को एक नयी दिशा मिली थी। इसके पूर्व जर्मनी के वैज्ञानिक बन्जेनबोर्ग डी. यंग ने भी एक प्रयोग करके प्रमाणित किया था कि जिलेटिन के तनु घोल में गमऐरेबिक को मिश्रित करने पर घोल कुछ गाढ़ा बन जाता है जबकि तापमान एवं अम्लता काफी सामान्य रही हो। वास्तविकता यह थी कि गमएरेबिक एवं जिलेटिन का घोल संपूर्णतया एक समान पूरे घोल में फैल गया था। ये आपस में मिलकर एक प्रकार के "गुच्छे" या एक प्रकार के छोटे-छोटे "गोल घेरे" बन गयी थी। जब ये "गोल घेरे" एक सामान्य आयतन पर पहुंच जाते हैं तब ये दिखने योग्य "बूंद" अपने आपको घोल से अलग कर लेती है। डॉ. यंग ने इसे को-एसरवेट नाम दिया था। को-एसरवेट एक उच्च अणुभार वाले बहुलीकृत (पोलीमराईज्ड) पदार्थ को तनु घोल से एकत्रित करने की बहुत ही गतिशील (डायनामिक) प्रक्रिया हैं।

डॉ. ए. आई. ओपेरिन ने इन अभिक्रियाओं को पुन: दोहराया। एडीनोसाईन डायफोस्फेट (एडीपी) से पोलीएडीनीन का जैविक प्रक्रिया (इन-विट्रो) के बाहर संश्लेषण किया गया । जिसके माध्यम में दूसरा बहुलक पोलीलायसीन रखा गया था। जब बहुलीकरण (पोलीमराइजेशन) की क्रिया आरम्भ होती है तब ये बहुलक को-एसरवेट बूंद में एकत्रित हो जाते हैं। अत: को-एसरवेट न केवल प्रकृति में पाये जाने वाले घोल (जैसे प्रोटीन, न्यूक्लिक एसिड आदि जीवरसायन) में बनते हैं बल्कि संश्लेषित बहुलक से भी बनते हैं। डॉ. ओपेरिन ने यह प्रमाणित किया था कि आदिम शोरबा (प्रीमेटिव सूप) में भी इसी प्रकार की अभिक्रिया अवश्य हुई होगी । को-एसरवेट बूंद एक बहुत ही सुलभ प्रादर्श है। जिसका पुनर्उत्पादन (रिप्रोडक्शन) प्रयोगशाला में किया जा सकता है। इस को-एसरवेट में जैविक चयापचयन के समान दिखनेवाली अभिक्रियाओं को दर्शाया जा सकता है। दो से अधिक पदार्थों द्वारा को-एसरवेट बनाया जा सकता है। परन्तु को-एसरवेट में एक कमी यह रह जाती है कि यह जैविक झिल्ली (प्लाज्मा मेमब्रेन) की भांति वायुमण्डल से क्रिया कर नहीं सकती है। फिर भी को-एसरवेट को पूर्व - जीवन के प्रारूप के रूप में मानकर निम्न अभिक्रियाओं को दर्शाया जा सकता है।

एक बूंद है जिसमें "क" एवं "घ" बाहरी

वायुमण्डल के पदार्थ है। अगर "ख" पदार्थ को-एसरवेट में प्रवेश करता है तब इस बूंद में प्रतिवर्ती (रिवर्सीबल) अभिक्रिया द्वारा "ग" पदार्थ उत्पन्न होता है। अब यह "ग" पदार्थ वायुमण्डल में विसर्जित हो जाता है

ख <————> ग

"ख" एव "ग" प्रतिवर्ती अभिक्रिया वाले पदार्थ हैं जो तेज गति से एक दूसरे में बदलते रहते है। जब कभी यह अभिक्रिया तेजगति से चलती है तब "ख"की सांद्रता कम हो जाती है। इससे माध्यम का संतुलन बिगड़ जाता है। अब दो विकल्प ही सामने होते हैं। पहला "ख" को बाहर से लाकर माध्यम में मिलाया जाय या "ग" के कुछ भाग को माध्यम से बाहर किया जाय। इससे भी अधिक जटिल प्रक्रिया भी पायी जाती है। जब एक या उससे अधिक पदार्थों का आगमन माध्यम में होता है तब उसमें नयी अभिक्रिया का जन्म होता है।

'ख" ——> "ग", "ग"——> "च"

जब दो अभिक्रिया के बीच सामंज्य स्थापित किया जाता है, "ग" या तो माध्यम में एकत्रित हो जाता है या फिर माध्यम से लुप्त हो जाता है। तब 'ग", "च" में बदलकर बाहर वायुमण्डल में आ जाता है । डॉ. ओपेरिन ने इस प्रकार की अभिक्रिया को दर्शाने के लिये प्राकृतिक बहुलक जैसे - पोलीसेकेराईट, प्रोटीन व न्यूक्लिकएसिड आदि लिये थे।

प्रयोग : - एक प्रयोग में डॉ. ओपेरिन द्वारा को-एसरवेट बूंद में पोटेटो-फास्फोरायलेस व प्रकिण्व ग्लुकोसायल ट्रांसफरेज लिया गया । एक को-एसरवेट को गम-एरेबिक व हिस्टोन द्वारा पीएच 6-6.2 (एसिड-बेस) पर प्राप्त किया गया । पोटेटो फास्फोरायलेस प्रकिण्व को को-एसरवेट में पूरा संग्रहित कर लिया गया । दूसरे प्रयोग में ग्लूकोज 1— फास्फेट का स्टार्च में घुलनशील बनाया जाता है। जिससे वह पूर्णतया को-एसरवेट में संग्रहित हो जाता है। (जिसका परीक्षण आयोडिन टेस्ट द्वारा कर लिया जाता है।) करीब 30 मिनिट के बाद 50 प्रतिशत स्टार्च का वजन बढ़ जाता है। अब दो विकल्प रह जाते हैं।

इस प्रकार को-एसरवेट क आयतन $1^1/_2$ गुना बढ़ भी जाता है।

पहला (अ), जब को-एसरवेट में ग्लूकोज 1-फास्फेट एक निश्चित मात्रा में संग्रहित हो जाता है। तब उसमें कोई अभिक्रिया नहीं होती है। दूसरा (ब), जब इस बूंद में बीटा-एमायलेज मिलाया जाता है तब एकत्रित स्टार्च माल्टोज में परिवर्तित हो जाती है। यह माल्टोज बूंद से बाहर निकलकर वायुमण्डल में मिल जाती है। इसका परीक्षण भी एक टेस्ट द्वारा कर लिया जाता है।

अभिक्रिया "अ" एवं "ब" गति पर आधरित है। अनुपात से बहुलक स्टार्च की मात्रा बाहरी उपस्थित पदार्थ के द्वारा घटाया या बढाया जा सकता है। अत: बूंद को फैलाया भी जा सकता है एवं तोड़ा भी जा सकता है। उपरोक्त प्रादर्श किसी एक हद तक जीवित कोषा में पाये जानेवाले पदार्थ के आगमन एवं विगमन को सामान्य प्रादर्श के रूप में दर्शाती हैं।

उपरोक्त अभिक्रियाओं की तरह ही आक्सीकारक-अवकारक (आक्सीडेशनरीडक्शन) प्रक्रिया के द्वारा पोलीमराईजेशन (बहुलीकरण) की क्रिया को भी को-एसरवेट बूंद में प्रयोग द्वारा दिखाया जा सकता है।

इलेक्ट्रॉन ट्रांसफर से (हाइड्रोजन) निष्कासित होने वाली ऊष्मा सीधी अभिक्रियाओं द्वारा ग्रहण नहीं की जाती है। अत: आक्सीकरक-अवकारक अभिक्रियाओं को फास्फोरायलेशन (एक फास्फोरस अणु का जुडना) की क्रिया से जोड़ने पर फास्फेट अणु द्वारा उत्पादित ऊर्जा पोलीमर के संश्लेषण की अभिक्रिया द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। को-एसरवेट में भी इस प्रकार की अभिक्रियाओं को दर्शाया जा सकता है। पूर्व जैविक (प्रिबायोटिक) काल में सूर्य की लघु तरंगें (शार्ट-वेव) पराबैंगनी किरणों के द्वारा ही जीवन की उत्पत्ति में मदद मिली होगी। इन्हीं किरणों द्वारा तात्कालिक वायुमण्डल में भेदन भी किया होगा। ठीक इसी प्रकार निम्न ऊर्जाधनी दीर्घ तरंगों (लांग वेव-लेंग्थ) वाले क्वांटा (सूर्य द्वारा पृथ्वी पर ऊर्जा लानेवाले अवयव) ने भी

एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की होगी जिससे कि वे किसी विशिष्ट रसायन द्वारा अवशोषित करली गयी होगी। उदाहरण के लिये एसकार्बिक एसिड एवं मिथाईलीन के मध्य एक बूंद रखने से दृश्य स्पेक्ट्रा की किरणों द्वारा आक्सीकरक - अवकारक अभिक्रियाए संचालित होंगी ।

ठीक इसी प्रकार से ये ही क्रियाएं आदिम शोरबा में प्रि-एक्युलिस्टिक युग में संचालित हुई होंगी। उदाहरण के लिये पोलएडिनेलिक एसिड का संश्लेषण हिस्टोन एवं रायबोन्युक्लिक एसिड (रान्युए) की को-एसरवेट में एडीनोसाईन डायफास्फेट (एसीपी) के माध्यम मे संचालित होता है ।इस क्रिया में आर्गेनिक फास्फेट प्राप्त होते हैं जो बूंद के बाहरी वायुमण्डल में विसर्जित हो जाते हैं।

एक अनुमान द्वारा जीवन की उत्पत्ति में पहले पहल विकास क्रम की पहली सीढ़ी पर उल्टे क्रम से चयापचयन की प्रक्रिया शुरू हुई होगी जो बाद में सीधे क्रम से चयापचयन की प्रक्रिया में बदल गयी होगी । इस विचारधारा को डॉ. एच. एन. होरोविज ने 1945 में प्रस्तुत किया था । (देखिये "चयापचयन प्रक्रिया का एक रूप" वैज्ञानिक अंक जन. मार्च., 1991)

डॉ. ए. आई. ओपेरिन ने यह बहुत बाद में प्रस्तुत किया था कि चयापचयन की क्रिया के विकास में बहुत सारे चयापचयन के क्रम रास्ते (मेटाबोलिकपाथवे) में क्रम से एक कड़ी से दूसरी कड़ी में जुडते चले गये होंगें। जैविक प्रणाली में प्रथम बार चयापचयन अवायुवीय परपोषी (एनएरोबिक हीट्रोट्राप) ही रहा होगा। क्यों कि बहुत से प्रोटोजोआ एवं अधिकतम जीवाणु (बेक्टेरिया) व सभी फंगस परपोषी हैं। बहुत सी जैविक प्रणालियां आर्गेनिक योगिकों को न केवल ऊर्जा के रूप में ही कार्य लेती है बल्कि कोषा को लगने वाले अवयवों के अग्रदूतों के रूप में भी कार्य ले लेती हैं। परन्तु बहुत से स्वयंपोषी (आट्रोट्राप) में परपोषी के चयापचयन भी बराबर उपस्थित रहते हैं।

अत: को-एसरवेट का पूर्व जैविक काल में आना एक सुगठित धारणा के रूप में लिया जाना चाहिये, जिसने विकास क्रम में और भी बहुत-सी सीढ़िया चढ़ी होंगी। ऊर्जा का रूपांतरण, चयापचयन, फिर पुनरुत्पादन आदि तब कहीं अंतत: "जीवन की उत्पत्ति" इस धरती पर हुई होगी। परन्तु वैज्ञानिक आज भी यह पता लगाने में असमर्थ है कि इन गतिशील प्रक्रियाओं का आरंभ बिना "चेतना" के कैसे हुआ होगा?

जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से हम प्रकृति में नयी प्रणाली पैदा करने में सक्षम हो गये हैं। परन्तु जीवन के उस "मौलिक अवयव" को प्राप्त करने से बहुत दूर हैं जिससे कि हम परखनली में "जीवन" को बना सके.

ओ. पी. खण्डेलवाल
67, शिक्षक नगर,
वी आई पी रोड,
इन्दौर—452 005.

♦ ♦ ♦

4. गुणों में भी बेजोड़ है आम

मीठा रसीला आम केवल स्वाद में ही अद्‌भुत नहीं है, गुणों में भी बेजोड़ है। खासतौर से इसके औषधीय गुण अनमोल हैं। पोषण की दृष्टि से यह उत्तम है। कच्चा या पका आम, इसकी पत्तियां, छाल, गुठली सभी में कुछ न कुछ औषधीय गुण हैं।

पके आम के वैज्ञानिक विश्लेषण से पता चला है कि सौ ग्राम गूदे में मुख्य रूप से पानी (81%) और कार्बोहाइट्रेट (17 %) मौजूद होते हैं। इनके अलावा प्रोटीन, वसा, खनिज तत्त्व और रेशे आधे-आधे प्रतिशत की मात्रा में पाए जाते हैं। पके आम में पके कैरोटीन (जिससे शरीर में विटामिन ए बनता है) पाया जाता है। कच्चे आम में पके आम की तुलना में ज्यादा औषधीय गुण देखे गये हैं।लूलगने पर कच्चे आम को पकाकर खाने या नमक मिलाकर शरबत पीने से बहुत लाभ होता है। अगर कच्चे आम को नमक लगाकर खाया जाय तो प्यास बुझती है और पसीने के साथ हुए नमक की कमी की भरपाई भी होती है।

पेट की गड़बड़ियों जैसे दस्त, पेचिस, कब्ज, अपच और बवासीर तक में कच्चे आम का सेवन

फायदा करता है। इसके लिए बेहद छोटे एक - दो कच्चे आम पर नमक लगाकर शहद के साथ खाना चाहिए। कच्चा आम जिगर और पित के कई रोग ठीक करने में समर्थ है, पर इसके लिए कच्चे आम को शहद और काली मिर्च लगाकर खाना चाहिए। कच्चे आम में मौजूद अम्लों के कारण पित अधिक बनता है। यह जिगर को ठीक रखता है, इसलिए पीलिया के रोगी को भी कच्चे आम के सेवन से लाभ होता है। इनकी कोमल पत्तियों का रातभर पानी में भिगोकर प्रात: उसी में निचोड़ कर पानी पीना चाहिए। इससे शुरूआती मधुमेह पर काबू पाया जा सकता है। आम की गुठली की गिरी निकालकर, छाया में सुखाकर, पाउडर बनाकर रख लेना चाहिए। दस्त (डायरिया) होने पर डेढ़ दो ग्राम पाउडर को शहद के साथ चटाने से बहुत लाभ होता है।

एक दो चम्मच ताजी बौर (फूल) के रस को दही के साथ खाने से भी दस्त पर रोक लगती है। तने की छाल डिपथिरिया तथा गले के अन्य रोगों को दूर करने में मदद करती है। इसके लिए छाल को घिसकर पतला लेप जैसा बना लेना चाहिए। इसकी दस ग्राम मात्रा को सवा सौ ग्राम पानी में डालकर गरारा करने से दुखते गले को बड़ा आराम मिलता है।

इस तरह आम केवल फल नहीं है, यह घरेलू वैद्य का काम भी करता है। इसीलिए इसे "फलों का राजा" कहा जाता है।

श्लोक प्रसाद सिंह
द्वारा— श्री अलख देव सिंह,
ग्राम—सहनौरा, पो. चकनवादा,
वाया—बाढ़ पटना — 403 213 (बि)

♦ ♦ ♦

5. गैसों में आयन युगल बनाने के लिए आवश्यक ऊर्जा

(हिन्दी में प्रस्तुत पी.एच.डी शोध प्रबंध का सार)

आवेशित अणु या परमाणु आयन कहलाता है तथा हाइड्रोजन का आयनीकरण करके प्रोटोन मिलता है। नाभिकीय प्रक्रिया, जैसे जैविक ऊतक की न्यूट्रोन (परमाणु के नाभिक पर उपस्थित उदासीनकण) के साथ परस्पर क्रिया, से भी प्रोटोन मिलते हैं । जैविक ऊतक सहित पदार्थ में न्यट्रोन अथवा प्रोटोन का प्रभाव उसमें उनकी अवशोषित मात्रा (डोज) पर निर्भर करता है।

अवशोषित ऊर्जा का मूल्यांकन सरल एवं सही ढंग से गैस भरे आयनीकरण संसूचकों (डिटेक्टरों) द्वारा किया जाता है। आयनीकरण संसूचक इसलिए क्योंकि इनमें आयनों की संख्या मापकर अवशोषित ऊर्जा की गणना की जाती है। अवशोषित मात्रा की गणना करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि एक आयन युगल बनाने में कितनी ऊर्जा अवशोषित होती है।

इस शोध का उद्देश्य गैसों में प्रोटोन के इसी मान अर्थात् 'एक आयन युगल बनाने में आवश्यक औसत ऊर्जा का मान' पर अध्ययन करना है। यह मान किसी भी पदार्थ में प्रोटोन द्वारा एवं जैविक ऊतक में न्यूट्रोन या प्रोटोन द्वारा अवशोषित मात्रा के मूल्यांकन के लिए आवश्यक है।

किसी गैस में इस औसत ऊर्जा के मान को ज्ञात करने के लिए एक तो यह पता लगाना होगा कि प्रोटोन की कितनी ऊर्जा अवशोषित हुई व उससे कितने आयन बने। यदि प्रोटोन की पूर्ण ऊर्जा अवशोषित की जाय तो इस मान को W से प्रदर्शित करते हैं और यदि आंशिक ऊर्जा अवशोषित कराई जाय तो इसे w से प्रदर्शित करते हैं। अभी तक के कार्य में मध्यम व निम्न ऊर्जा के प्रोटोनों के लिए W का मान ही हुआ है, पर तनु या अंगुलाकार के संसूचकों से डोज मापने के लिए w अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इनमें गैस की मात्रा इतनी ही होती है कि प्रोटोन अपनी आंशिक ऊर्जा ही अवशोषित करता हैं। अत: इस शोध में हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, आक्सीजन निआन, हीलियम, आर्गन वायु व आइसोब्यूटेन गैसों में 1.3,1.5 व 2 Mev के प्रोटोनों के W का मान ज्ञात किया है व उसकी W अधिक से तुलना की है। यह भी

अध्ययन किया है कि ऊर्जा के साथ उसमें कैसे परिवर्तन होता है। क्या गैस की परमाणु

संख्या, प्रोटोन ऊर्जा व w में संबंध स्थापित हो सकता है। यह भी पता लगाया कि इन गैसों की रोधन क्षमता अर्थात प्रोटोन को धीमा करने की क्षमता इससे ज्ञात की जा सकती है क्या?

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 41 सेमी x 7 सेमी. x 7 सेमी. के आकार का कक्ष लिया गया जिसमें गैसों को 5-10 टौर (मिमी पारे की ऊंचाई के बराबर दाब) पर भरा गया। कक्ष के प्रवेश पर 0.47 मिमी आकार के खुले छिद्र का संपुंजक (कॉलीमेटर) तथा निकास पर लगभग 4 माइक्रोन मोटाई की माइलर पर्णिका (फॉयल) को लगाया गया। इस छिद्र से गैस के रिसने के कारण इस कक्ष को प्रोटोन स्रोत (वेनेग्राफ त्वरक) जहां निर्वात होता है, से जोड़ने के लिए उन दोनों के बीच एक ऐसी युक्ति लगाई जिससे रिसी हुई गैस को बाहर फैंका जा सके ताकि प्रोटोन स्रोत में निर्वात नहीं बिगड़े। इस युक्ति को बहुपम्पन युक्ति (डिफरेन्शियल पम्पिंग डिवाइस) कहते हैं और इसमें 1.41 मिमी व 1.61 मिमी छिद्र के दो संपुंजक लगे होते हैं। इन संपुंजकों के बीच अलग-अलग पम्पों द्वारा पम्पन किया जाता है।

इस गैस कक्ष में दो प्लेटें लगी होती हैं जिनके बीच 1000 किलोवोल्ट के लगभग विभव लगाकर प्रोटोनों द्वारा उत्पन्न आयनों की गणना कर लेते हैं। कक्ष के निकास पर लगी पर्णिका से निकले प्रोटोनों का फैरेडे कप में समेट कर उनकी संख्या की गणना कर लेते हैं। निकास पर लगी पर्णिका से प्रकीर्णित (स्केटर्ड) प्रोटोनों को घनावस्था संसूचक (सॉलिड स्टेट डिटेक्टर) पर प्राप्त करके उनका वर्णक्रम पढ़ते हैं। कक्ष में निर्वात करके और फिर गैस भरके जो वर्णक्रम आते हैं उनके अन्तर से एक प्रोटोन द्वारा गैस में अवशोषित ऊर्जा निकाल लेते हैं।

शोध कार्य के परिणाम दर्शाते हैं कि (1) प्रोटोन की ऊर्जा कम होने पर w का मान बढ़ता है। सभी गैसों में 1.3 MeV पर w का मान 2 Mev के मान से 13 प्रतिशत अधिक है (2) उसी ऊर्जा पर W का मान w के मान से 12 से 18 प्रतिशत अधिक है। (3) आयनीकरण विभव, उत्तेजना विभव व w में किसी प्रकार का संबंध स्थापित तो न हो सका पर यह पाया गया कि किसी एक के बढ़ने या घटने से W का मान बढ़ता या घटता है।(4) रोधन क्षमता ज्ञात करने की पुष्टि हुई। (5) प्रोटोन ऊर्जा, व गैस की परमाणु संख्या में प्रयोसिद्ध सूत्र स्थापित किया जा सका और (6) पहली बार आइसोब्यूटेन में w या W का मान ज्ञात हुआ है।

डॉ. विजय कुमार भार्गव
परमाणु उर्जा नियामक परिषद
विक्रम साराभाई भवन अणुशक्तिनगर,
बम्बई - 400 094

■■■

पृष्ठ 35 का शेष भाग

यह देखा गया है कि शैवालों तथा प्लवकों (प्लैंकटन) में इन धातुओं का बहुत अधिक संचय होता है। अत: धातुओं के अस्थायी छुटकारे के लिये शैवालों तथा प्लवकों की खेती पर बल देने की आवश्यकता है। शोधों से पता चला है कि चीड़ का पेड़ मिट्टी से बेरीलियम अवशोषित कर उसे धातु प्रदूषण से मुक्त कर देने की सामर्थ्य रखता है। हैयुमैनिएस्ट्रम नामक वनस्पति जमीन से तांबे एवं कोबाल्ट का अवशोषण करती है। कुसीफेरी परिवार की एक वनस्पति थ्लास्पी रोटण्डीफोलिया जस्ते और सीसे को वातावरण से अवशोषित करती है। इनमें इनकी मात्रा 1 - 2 प्रतिशत तक हो सकती है। इसी प्रकार सेम, मटर आदि के पौधे जमीन से मोलिब्डिनम धातु को अवशोषित कर लेते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये भारी धातुयें कितनी अधिक विषैली हैं। शहरी गन्दे जल (सीवेज - स्लज) से सींची गयी मिट्टियों में उपजने वाली फसलों में कैडमियम की उच्च मात्रायें पायी जा सकती हैं। अतएव फसलों द्वारा कम से कम कैडमियम का उद्ग्रहण हो, इस दिशा में शोध की आवश्यकता बनी हुई है।

■■■

बाल विज्ञान

1.अंक - प्रदेश की समस्या

गोविंद प्रसाद शर्मा
13/1, श्रेणी-चार
लोक निर्माण विभाग कॉलोनी,
निर्माण नगर, लखनऊ-226 012

एक समय की बात है।रोमन अंक-प्रदेश में बड़ी ही अव्यवस्था फैली हुई थी। अव्यवस्था का कारण था कि प्रदेश की सत्ता सम्हालने की प्रभुता तथा अंकों को अनुशासन में रखने की क्षमता किस में है? प्रदेश में मुख्य रूप से ये प्रतिनिधि प्रतिनिधित्व की क्षमता रखने का दावा करते थे - शून्यदेव, एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ व अनन्त महाप्रभु। "संसद भवन के गोलमेज के चारों ओर सभी बैठकर आपसी सहमति पर सत्ता सम्हालने के लिए अध्यक्ष का चुनाव कर लें," यह विचार था अनन्त महाप्रभु का। इस सुन्दर प्रस्ताव को समर्थन देने के लिए शून्यदेव ने सहमति जाहिर की। सभी प्रतिनिधि वृन्द संसद के गोलमेज के पास एकत्रित हो गये। सभी ने अपना अपना आसन ग्रहण किया। शून्य देव के साथ एक और बाल सदस्य भी था। आकृति में बिल्कुल शून्यदेव जैसा ही।

अनन्त महाप्रभु ने उठकर प्रस्ताव रखा, "प्रत्येक प्रतिनिधि अपनी-अपनी क्षमताओं से परिचय करायेगा तथा सभी प्रतिनिधियों की सहमति के आधार पर प्रदेश की सत्ता सम्हालने का दायित्व संयुक्त रूप से सौंप दिया जायेगा।"

सभी ने इस बात पर प्रसन्नता जाहिर की। सर्वप्रथम श्री एक से कहा गया कि वे अपनी क्षमता से सभी को परिचितत कराने का कष्ट करें। श्री एक ने अपने आसन से उठकर प्रतिनिधि समूह के प्रति आभार प्रकट किया और अपना संभाषण प्रारम्भ किया –

"मेरे प्रिय सहप्रतिनिधियों!

मैंने आप लोगों को अंको के सम्बोधन से इसलिये सम्बोधित नहीं किया, क्योंकि हमारे बीच दो प्रतिनिधि श्री शून्यदेव व अनन्त महाप्रभु वास्तव में अंकों की श्रेणी में नहीं आते हैं।"

इस उक्ति को सुनते ही शून्य देव मेज को जोर - जोर से थपथपाते हुए विरोध प्रदर्शन करने लगे। इस पर एक ने अनुरोध किया कि पहले उनकी अभिव्यक्ति को समाप्त होने दे, फिर सभी प्रतिनिधि अपनी - अपनी बातों को बारी - बारी से रखें । सभी प्रतिनिधि शान्त हो गये ।

श्रीमान एक ने अपना भाषण जारी रखते हुए अपनी बात को आगे बढ़ाया –

"समूचे अंक प्रदेश का मैं अकेला व्यक्ति हूं, जो इकाई का द्योतक हूं। मैं एक मात्र इकाई हूं, जिसके कारण इस प्रदेश के समस्त अंकों व संख्याओं के सामर्थ्य का बोध होता है। जिस प्रकार व्यक्ति की कल्पना के बिना समाज के बारे में नहीं सोचा जा सकता है, उसी प्रकार मेरी स्थिति के बिना इस प्रदेश के अन्यांकों व संख्याओं की क्षमताओं की गणना सम्भव नहीं है।

हां एक बात अवश्य है कि मैं परिमाण बोधक होते हुये शून्यदेव की स्थिति की गणना करने में असमर्थ हूं। इसका एक मात्र कारण है कि शून्यदेवजी परिमाणबोधक नहीं हैं। लेकिन शून्यदेव के सामर्थ्य को बोध कराने में मैं अकेला ही असक्षम नहीं हूं, बल्कि अंक प्रदेश के समस्त सदस्य भी इसी श्रेणी में आते हैं। इसके साथ - साथ एक महत्वपूर्ण बात यह है कि वे जिसके दांयीं ओर बैठ जाते हैं, तो उसका परिमाण दसगुणा बढ़ जाता है। उनकी इस विचित्रता से मैं अचम्भित हूं कि परिमाण हीन व्यक्ति समाज की दशा को व्यक्त करने में कैसे समर्थ है? शायद, इस प्रकार से समझा जा सकता है कि मृत व्यक्ति समाज के बीच न होते हुए भी समाज के बीच बना रहता है और उस मृत व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज की दशा सुधारने में योगरत

रहता है।"

शून्यदेव श्री एक की इस अभिव्यक्ति पर न विरोध प्रकट कर सके और न सहमति। वे इस यथार्थ को नकार नहीं सके, लेकिन यथार्थ को जिस रूप से प्रस्तुत किया गया था, उससे वे संतुष्ट नहीं हो पा रहे थे।

एक ने अपना वक्तव्य जारी रखा –

"हां तो मैं यह कह रहा था कि इस प्रदेश की एक मात्र इकाई मैं ही हूँ। मेरा सामर्थ्य ही गुणित होकर सभी अंकों व संख्याओं में विद्यमान रहता है। इस प्रदेश के प्रत्येक सदस्य की धारिता व उसका सामर्थ्य व अस्तित्व मुझ पर ही निर्भर करता है। चूंकि भारतीय दर्शन की सर्वमान्य धारणा है कि "एका ब्रह्म द्वितीयों नास्ति", इसलिये मैं ब्रह्म का भी द्योतक हूँ। ब्रह्म को प्रकट करने की क्षमता मेरे अतिरिक्त किसी में भी नहीं है। मै एकता को भी प्रकट करता हूँ। मेरे अलावा प्रत्येक अंक अनेकता व विभिन्नता को ही प्रकट करता है । एकता मेरी अर्द्धांगिनी है। मेरी मर्यादा ही समाज में प्रतिष्ठित है। इसलिए इस प्रदेश का एक मात्र प्रतिनिधि मैं हूं जो सत्ता सम्हालने में सक्षम है।

"चूंकि मैं इस प्रदेश में एक मात्र इकाई के रूप में प्रतिष्ठित हूं, इसलिए प्रत्येक अंक व संख्या का परिमाण यही दर्शाता है कि उसमें कितनी इकाइयाँ अन्तर्निहित है। उसका नाम यही प्रकट करता है कि उसका परिमाण उतनी ही इकाइयों का संयुक्त परिमाण है। मैं जिस अंक या संख्या में जुड़ता हूँ, उसमें क्रमिक वृद्धि हो जाती है और उसका रूप बदल जाता है। इसी प्रकार जब मैं घटता हूँ तो क्रमान्तर हो जाता है और उसका रूप बदल जाता है।जुड़ने व घटने के बदलाव के फलस्वरूप परिमाण में मात्र इकाई का अन्तर पैदा होता है। हां, यह स्वीकारने में मुझे कोई शर्म नहीं है कि किसी अंक या संख्या के साथ जब मेरी गुणा व भाग की गणना की जाती है, तो उस अंक या संख्या में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। कहने का मतलब है कि गुणा व भाग की क्रिया करने में समर्थ नहीं हूं। मेरी एक मौलिक विशेषता यह है कि मेरे कंधे पर किसी अंक या संख्या के घातीय भार पड़ने से मेरे रूप में कोई भी परिवर्तन नहीं होता है और ना ही मैं किसी अन्य के कंधों पर घातीय भार डालकर उसके रूप को परिवर्तित कर सकता हूं। कहने का अर्थ यह है कि घातीय गणना में मेरा कोई योगदान नहीं है। मैं मौलिक इकाई के रूप में प्रतिष्ठित होने के बाबजूद भी समांक के रूप में नहीं जाना जाता हूं। मुझे विष्मांक के रूप में वर्गीकृत किया गया है। एक बात और है कि शून्य देव जिससे भी गुणित होते हैं, उसका अस्तित्व ही मिटा देते हैं। इसलिए मेरे से भी गुणित होने पर वे मेरी मौलिकता को ही नष्ट कर मुझे अपने में विलीन कर लेते हैं। उनके इस कार्यकलाप को न मानने का सामर्थ्य न तो मुझमें है और न किसी अन्य में ही। एक और मजे की बात से परिचय कराता हूँ।मेरे तथा मात्र मेरे से व्युत्पन्न संख्याओं के वर्ग को एक साथ सूचीबद्ध किया जाये तो एक पिरामिडीय स्थिति विकसित हो जाती है। कहने का मतलब यह है कि I, II, III, IIII इत्यादि के वर्गांक क्रमशः 1, 121, 12321, 1234321 इत्यादि होते हैं। अन्तरराष्ट्रीय पद्धति के अनुसार मेरा संकेत रूप सरलतम है, वक्रताविहीन है।

इसी प्रकार से मेरी बहुत सारी विशेषताएं हैं। इसलिए मैं यह कहने में गर्व महसूस करता हूं कि इस प्रदेश की सत्ता सम्हालने में मैं ही सक्ष्म हूँ ।"

श्रीमान एक द्वारा वक्तव्य समाप्त करने के पश्चात "दो" महोदय ने सभी को सम्बोधित करते हुए कहा कि मैं एक मात्र प्रतिनिधि हूं जो एक का क्रमानुयायी हूं। मैं समता स्थापित करने की एकमात्र कसौटी हूं। कौन संख्या सम है या विषम, इसकी पहचान सिर्फ मेरे द्वारा सम्भव है। मैं सम संख्याओं को पूर्णरूपेण विभाजित करने में सक्ष्म हूं। वे सब संख्याएं जिनके इकाई स्थान पर शून्य, दो, चार, छः, या आठ प्रतिष्ठित रहते हैं, मुझसे पूर्णरूपेण, विभाजित होती हैं। जिन संख्याओं को मैं विभाजित करने मे समर्थ नहीं हूं, वे समता के गुण से वंचित हैं। एक और बात से भी आपको अवगत करा दूं। यदि क्रमानुसार समसंख्याओं के सदस्यांकों को जोड़ा जाये, तो उनके योगांकों यानि मूलांकों की स्थिति समांकों व विषमांकों की श्रेणी में बारी - बारी से प्रकट होने लगती है। इसी क्रम में एक

और तथ्य का भी उजागर कर दूं। सम संख्याएं आपस में जुड़ने व घटने पर भी सदैव सम बनी रहती हैं। लेकिन एक विषम संख्या सदैव दुष्टता निभाती है। वह जुड़ने व घटने पर सम संख्याओं की समता को नष्ट कर देती है और विषमता पैदा करती है। इसके अतिरिक्त एक बात और भी उपयोगी है कि यदि सम गिनती में विषम संख्याओं को जोड़ा जाये, तो विषमता नष्ट हो जाती है, परिणाम में समता प्रकट होती है। इन सब बातों में मेरा ही दर्शन छुपा हुआ है। हां, एक कमजोरी है मेरी और मेरे समूह की मेरे द्वारा गुणित होने के फलस्वरूप कोई भी संख्या विषमत नहीं रहती हैं। मैं तो विषम व अविभाज्य संख्याओं के साथ गुणित होने के पश्चात् समता ही स्थापित करता हूं ।"

चूंकि इन बातों को चार, छः व आठ भी सुन रहे थे तथा उसी समूह से ताल्लुक भी रखते हैं, इसलिए इस विशेषता को वे सब कमजोरी मानने के लिए तैयार नहीं हुए। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति में उसके जन्मदाता का ही संस्कार परिलक्षित होता है। अतः यह कमजोरी नहीं है, बल्कि यह एक अनिवार्य विशेषता है।

दो महोदय ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए आगे कहा --

"मेरे कारण ही समाज में द्वैत दर्शन की परम्परा शुरू हुई है। पूरी सृष्टि की परिभाषा दो तथ्यों पर निर्भर करती है-- ब्रह्म व जीव, जड़ व चेतन, पदार्थ व ऊर्जा, नर व मादा । यानि सर्वत्र द्वैत परम्परा ही कायम है। मनुष्यों को कर्म संपादन के लिए जिन मुख्यांगों का लाभ मिला है, वे मेरा ही प्रारूप है यथा दो हाथ, दो पैर, दो आँख, दो कान, इत्यादि। मेरी अर्द्धांगिनी समता है। मेरा बस चले तो मैं सर्वत्र समता स्थापित कर दूं। समता यानि संतुलन ही मानव के लिए शांति का एक मात्र रास्ता है। इसीलिए तो कहा गया है - "समत्वं योग उच्यते"। इन बातों के साथ मैं अपना संभाषण समाप्त करता हूं और आशा करता हूं कि प्रतिनिधि गण मुझे ही सत्ता सम्हालने के लिए योग्य समझेंगे।"

अब तीन की बारी थी कुछ कहने की। तीन महोदय ने खड़े होकर सभी प्रतिनिधियों को सम्बोधित किया -

"हॉलाकि मैं दो का क्रमानुयायी हूं, फिर भी मेरे गुण धर्म उनसे सर्वथा भिन्न हैं। मेरी गुणित जितनी संख्याऐं हैं, उनके मूलांक क्रमशः तीन, छः व नौ के रूप में बारी -बारी से अवतरित हाते हैं। हालांकि विषम संख्याओं के समूह में पहला स्थान एक का है, लेकिन वह इस समूह का पहला अविभाज्य यानी रूढ़ अंक नहीं है। यह सौभाग्य सिर्फ मुझे प्राप्त है। हालांकि दो भी अविभाज्य संख्याओं की श्रेणी में है, लेकिन वह इस समूह का अकेला अंक है, जो विषम न होकर सम है। वह बहुत चालाक है। संख्याओं के समूह का भी अगुआ बनना चाहता है और अविभाज्य संख्याओं के समूह में भी घुसा हुआ है। लेकिन वह इस समूह का अगुआ नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रत्येक अविभाज्य संख्या दो के अतिरिक्त विषम संख्या ही होती है। इसलिए इस समूह का अगुआ मैं ही समझा जाता हूं। इसके अतिरिक्त मैं एक और समूह का भी अगुआ हूं । वह समूह उन संख्याओं का है जिनके मूलांक केवल तीन, छः व नौ होते है। इसलिए मैं त्रिभुजीय अंक के रूप में भी जाना जाता हूं। एक बात और बता दूं कि जिन संख्याओं के मूलांक मुझसे विभाजित हो जाते हैं, उनको विभाजित करने में सर्वथा सक्ष्म हूं ।

इतनी बातों को कह कर उसने प्रतिनिधियों की प्रतिक्रिया जाननी चाही। सभी प्रतिनिधि शांतचित्त से भाषण को सुन रहे थे। किसी की भाव में प्रतिक्रिया का कोई भी अंश नहीं झलक रहा था। केवल दो की भाव भंगिया कुछ परिवर्तित सी लग रही थी। तीन ने अपनी बातों को आगे बढ़ाते हुए कहा --

"दो द्वारा स्थापित समता मानवीय जीवन में एकरसता पैदा करती है। इसके फलस्वरूप जीवन का आनन्द प्रायः समाप्त हो जाता है। विषमता तो मानवीय जीवन की कसौटी है। यदि जीवन में सुख ही सुख हो, तो यह स्थिति जीवन की कोई यथार्थता नहीं दर्शाती है। इसलिए मानवीय जीवन के लिए जितनी जरूरत है सुख की समता की, उतनी ही

जरूरत है दुख की विषमता की ।यदि मानवीय जीवन में विषमता का अर्थ समाप्त हो जायेगा, तो कर्म की अनिवार्यता शेष नहीं रहेगी । इस प्रकार विषमता व अविभाज्यता दोनों का एक मात्र पोषक मैं हूं। ये दोनों मेरी अर्द्धांगिनियां हैं। मैं तो बहुत सारी मान्यताओं का मापदण्ड बन चुका हूं, यथा गुणों की संख्या तीन यानि सत्वगुण, रजोगुण व तमोगुण, शरीर की संख्या तीन यानि स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर । चार वेदों के स्थान पर वेदत्रयी की ही मान्यता प्रचलित है। ज्यामितीय आकार का आधारित तत्व त्रिभुज ही है। त्रयदेवां व तीन देवियों की मान्यता ही हिन्दु धर्म में प्रचलित है। इस प्रकार मेरी कई विशेषताओं से आप सभी अवगत हो चुके हैं। अत: मैं आशा करता हूं कि सत्ता सम्हालने का भार आप मुझे ही सौपेंगे।"

अपना संभाषण समाप्त कर तीन महोदय बैठ गये। इसके बाद श्रीमान चार ने खड़े होकर सभी प्रतिनिधियों को संबोधित किया । उन्होंने अपना संभाषण प्रारम्भ किया.

"मैं प्राकृतिक अंकों के बीच पहला सदस्य हूं जो व्युत्पन्न अंक के रूप में जाना जाता हूं। हालांकि यहाँ व्युत्पन्न अंक और भी हैं, जैसे छः, आठ व नौ, लेकिन पहला स्थान मेरा ही है। हम लोगों के बीच पूर्ण वर्गांक के रूप में सिर्फ तीन प्रतिनिधि योग्य हैं - एक, मैं और नौ। एक की स्थिति बिल्कुल ही अलग किस्म की है। अत: पूर्ण वर्गांक के रूप में सिर्फ मुझे व नौ को ही प्रतिष्ठा प्राप्त है। अत: इस दृष्टिकोण से भी मैं सर्वप्रथम पूर्ण वर्गांक हूं। मैं दो का वर्ग हूं और नौ तीन का है। मेरे गुणित अंकों के मूलांको की क्रमवार व्यवस्था यदि देखी जाये, तो पता चलता है कि साथ - साथ दो क्रम एक साथ व्यवस्थित हैं - 8,3,7,2,6,1,5,9,4,8,3,7,2 यानि 8,7,6,5,4,3,2,1 तथा 3,2,1,9,8,7। यह घटते हुए क्रम में दो समान्तर श्रेणीबद्ध व्यवस्था है। हालांकि यह स्थिति मेरे क्रमानुयायी पांच महोदय की भी है, लेकिन उनके गुणांकों के मूलांकों की श्रेणी बढ़ते हुए क्रम में होती है।"

चार ने अपनी बातों की आगे बढ़ाते हुए कहा - "मैं किन संख्याओं को विभाजित करने में पूर्ण सक्षम हूं, इसकी पहचान उन संख्याओं के मात्र इकाई स्थान पर स्थित समांकों पर निर्भर नहीं है। इसकी परख संख्या के दहाई व इकाई स्थान पर स्थित संयुक्ताकों पर निर्भर करती है। यदि संयुक्तांक मेरे द्वारा विभाजित होते हैं, तो पूर्ण संख्या भी मेरे द्वारा विभाजित होते हैं। यदि दहाई व इकाई स्थान पर शून्यदेव ही स्थित हों, तो भी उनको विभाजित करने मे मैं पूर्ण सक्षम हूं।"

इतना कह कर श्रीमान पानी पीने लगे। पानीं पीकर उन्होंने अपना संभाषण पुन: जारी किया —

"मानवीय जीवन में भी मेरे रूप का बहुत बड़ा महत्व है। मानव आयु को चार वर्गों में विभक्त कर जीवन को व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया है। ये चार भाग चार आश्रम के नाम से जाने जाते हैं। मानव समुदाय को भी चार वर्षों में व्यवस्थित कर कर्म संपादन के दायित्व सौंपे गये हैं। वेदत्रयी की मान्यता को समाप्त कर चार वेद की परम्परा स्वीकारी गयी है। पुरुषार्थ भी चार माना गया है- धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष। अत: मैं इस आशा के साथ अपना संभाषण समाप्त करता हूं कि सत्ता सम्हालने का मौका मुझे अवश्य दिया जायेगा।"

इतना कहकर श्रीमान "चार" बैठ गये। "पाँच" महोदय शीघ्रता से उठे और उन्होंने अपना भाषण शुरू कर दिया —

"मैं विषमांक हूँ और अविभाज्यांक भी। हालांकि यह गुण तीन महोदय में भी है, लेकिन मैं तीन के जैसा त्रिभुजीय गुण का वाहक नहीं हूं। मेरी स्थिति इस प्रदेश में सरलतम है। मेरे गुणांकों की पहचान बड़ी ही सरल है। जिन संख्याओं के इकाई स्थान पर मैं स्वयं या शून्यदेव जी हों, वे मुझसे पूर्णरूप से विभाजित हो जाते हैं। एक बात और है कि मेरे कंधों पर किसी भी संख्या का घातीय प्रभाव पड़ने के फलस्वरूप जो भी संख्याएं अवतरित होती हैं, उनके इकाई स्थान पर केवल मैं प्रतिष्ठित रहता हूं। ये अधिकार मैंने अपने लिये सुरक्षित रखा हैं। चार महोदय ने तो मेरे गुणांकों के मूलांकों की व्यवस्था के संबंध में पहले ही बता दिया है। अत: इस संबन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना

है।"

अपनी गणितीय स्थिति रखने के बाद उन्होंने अपना दार्शनिक महत्व प्रस्तुत किया —

"मैं ही पंचभूतों का द्योतक हूं। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश ही पंचभूत के नाम से जाने जाते हैं। ऐसी दार्शनिक मान्यता है कि मानव शरीर इन्ही पाँच तत्वों से निर्मित है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव शरीर व उसका जीवन मेरे ही तात्विक आधार पर टिका हुआ है।"

अपना संक्षिप्त भाषण समाप्त कर "पाँच" महोदय बैठ गये। उसके बाद कोई नहीं उठा, तो अनन्त महाप्रभु ने श्री छः को निर्देशित करते हुए कहा कि अब वे अपने संबंध में जनप्रतिनिधियों को बतायें। श्रीमान छः अपने आसन से उठे और विनम्र होकर अपनी स्थिति को समझाने लगे —

"मैं भी अपने भाई तीन जैसा ही त्रिभुजीय गुण से युक्त हूं। मेरे गुणांकों के मूलांक भी क्रमशः तीन, छः और नौ ही होते हैं और बारी - बारी से क्रम को दुहराते हैं। मेरी एक अलग विशेषता है कि मैं जितनी संख्याओं से विभाजित होता हूं, उनका योगांक भी मैं ही हूं। कहने का मतलब यह है कि मैं एक, दो व तीन से विभाजित होता हूं, उन तीनों का योगांक दूसरा कोई नहीं है बल्कि मैं ही हूं। कौन सी संख्या मुझसे पूर्ण रूप से विभाजित होगी, इसकी पहचान उतना सरल नहीं है, जितना कि अग्रांकों के मामले में है। इस मामले को सुलझाने के लिए मुझे अपने गुणन खण्डों दो और तीन का सहारा लेना पड़ता है। जो संख्याएं दो व तीन से विभाजित हो सकती है, उनको मैं भी विभाजित करने में अपने को पूर्ण समर्थ पाता हूं। पुराने जमाने की बात है। पाठ्य क्रम को क्रमबद्ध करने की दृष्टि से शास्त्रों को छः भागों में वर्गीकृत किया गया था।"

छः महोदय अपनी बातों को समाप्त कर धीरे से अपने आसन पर बैठ गये। सभी प्रतिनिधि अभी यही समझ रहे थे कि श्रीमान छः अभी और भी कुछ कहेंगे, लेकिन उन्होंने आगे कुछ भी नहीं कहा। सात महोदय जब आश्वस्त हो गये कि अब उन्हें ही अपनी स्थिति स्पष्ट करनी है, तो उन्होंने उठकर अपना संभाषण प्रारम्भ किया —

"मुझमें कुछ भी विचित्रता नहीं है। मैं एक, तीन, पांच के जैसा ही विषमांक हूं तथा दो, तीन व पांच के समान अविभाज्यांक हूं। इन समरूपताओं के अतिरिक्त भी मेरी एक विशेषता है कि मेरे गुणांकों के मूलांको की सूची में पहले विषमांक घटते हुए क्रम में होते हैं, फिर समांक घटते हुए क्रम में। कहने का मतलब है कि मूलांक क्रमशः 7,5,3,1,8,6,4,2,9,7,5,3,1 — के रूप में व्यवस्थित होते हैं।

अपनी बातों को जारी रखते हुए उन्होंने आगे कहा —

"हां यह पता लगाना उतना सरल नहीं हैं कि किन संख्याओं को मैं पूर्णरूप में विभाजित करने में समर्थ हूं। इसकी पहचान के लिए एक तरीका सुलभ है कि जिस संख्या की विभाज्यता की जाँच करनी है, उससे मेरे द्वारा अन्तरित कर संख्याओं कों क्रम से व्यवस्थित कर लिए जाते हैं और उनके मूलांकों के व्यवस्था क्रम को मेरे गुणांकों के मूलांकों के व्यवस्था क्रम से तुलना की जाती है। यदि तुलना के फलस्वरूप व्यवस्था क्रम एक जैसा है, तो अभीष्ट संख्या को विभाजित करने में मैं अपने को समर्थ पाता हूँ।"

इतनी बातों को कहकर "सात" महोदय ने सामाजिक व्यवहार में होने वाले संस्कार के सम्बन्ध में बताने लगे —

"सामाजिक संस्कारों में सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है विवाह। विवाह संस्कार को तभी पूर्ण माना जाता है जब सप्तपदी यानि सात फेरे की रस्म पूरी हो जाती है। इस प्रकार सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी मेरा स्थान बहुत महत्वपूर्ण है।"

इतनी बातों को कहकर श्रीमान सात बैठ गये। आठ(8) महोदय मुस्कुराते हुए उठे। उन्होंने सभी प्रतिनिधियों को एक बार देखा और अपना संभाषण शुरू किया —

"मैं भी आप सभी की तरह एक प्राकृतिक अंक के रूप में प्रतिष्ठित हूं। मानव ने हम सभी को जो रूप प्रदान किया है, उनमें सिर्फ एक ऐसा है जिसका रूप सरल कहा जा सकता है। शेष सभी

के रूपों में सरलता नहीं है। दो, तीन, पाँच, छः, मैं तथा नौ के रूपों में अंशतः या पूर्णतः वक्रता अवश्य है। चार व सात में वक्रता तो नहीं कहा जा सकता है, लेकिन सरलता भी नहीं है। उनके रूपों को एक से अधिक सरल रेखाओं से व्यक्त किए जाते हैं। मुझमें वक्रता अवश्य है, लेकिन मेरी वक्रता पूर्ण परिभाषित है। मेरे रूप में दो दो शून्यदेव स्पर्श करते हुए दिखलाये जाते हैं। हालांकि मै तो परिमाणबोधक पूर्ण प्राकृतिक अंक हूं और शून्यदेव परिमाण हीन हैं, फिर भी मेरा गुण शून्यदेव के गुणों से सर्वथा भिन्न है। मैं किसी भी पूर्णांक का सर्व प्रथम घनांक हूं। श्री एक अपवाद हैं। जिस प्रकार पूर्णांक का वर्गांक होने का सौभाग्य श्रीमान चार को प्राप्त है, उसी प्रकार घनांक होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है।"

अब मैं अपने गुणांकों के मूलांकों के संबन्ध में बताता हूं —

मेरे गुणांकों के मूलांकों को यदि सूचीबद्ध कर देखा जाये तो यह स्पष्ट है कि मूलांकों के व्यवस्था क्रम प्राकृतिक अंकों के क्रम का उलटा है। यानि मेरे गुणांकों के मूलांकों के व्यवस्था क्रम एक महोदय के गुणांकों के मूलांकों के व्यवस्था क्रम का उलटा होता है। यह विशेषता मेरे अलावा किसी और प्रतिनिधियों के साथ नहीं है। मेरे से विभाजित होने वाले संख्याओं की पहचान यह है कि इकाई, दहाई व सैकड़ा स्थानों पर या तो शून्यदेव स्थित हो या इन स्थानों पर प्रतिष्ठित संयुक्तांकों को मैं विभाजित करने में समर्थ रहूं। "अध्यात्म में जब योग की चर्चा चलती है तो अष्टाँग योग के संबंध में अवश्य चर्चा होती है।"

इतना कह कर श्रीमान आठ चुप हो गये। "नौ" (9) महोदय बड़ी शीघ्रता से उठे और अपनी बातें कहने लगे —

"अंक पद्धति में स्थापित अंकों में मैं अकेला सदस्य हूं जो अधिकतम इकाईयों को समावेशित किए हूं। कहने का मतलब है कि मैं महत्तम परिमाण का द्योतक हूं। मेरा रूप श्रीमान छः (6) से मिलता जुलता है, लेकिन मौलिक अन्तर यह है कि हम दोनों का निरूपण एक तरह से न होकर उलट तरीके से होता है। यदि मुझे उलटा कर पढ़ा जाये तो मैं अपना ही रूप दर्शाने में असमर्थ हो जाता हूं और छः का रूप ले लेता हूं। मैं तीन व छः जैसा त्रिभुजीय गुण से युक्त नहीं हूं। मैं अकेला सदस्य हूं जिसके गुणांकों का मूलांक बनने का सौभाग्य दूसरे को प्राप्त नहीं होता है, बल्कि मैं ही मूलांक के रूप में सदैव प्रतिष्ठा पाता हूं। यह विशेषता मेरे अलावा किसी और सदस्यों में नहीं है।"

इसके अतिरिक्त एक बात और बता दूँ —

"जब भी कर्मकाण्ड किया जाता है, मान्यता प्राप्त नौ ग्रहों की पूजा अवश्य की जाती है। भक्ति भी नौ प्रकार की मानी जाती है। अतः समाज के बीच भी मेरी प्रतिष्ठा है।"

इतना कह कर श्रीमान "नौ" पानी पीने लगे। पानी पीने के पश्चात उन्होंने अपना वक्तव्य पुनः चालू रखा —

मेरे गुणांकों को यदि उलट दिया जाता है, तो उस उलटी संख्या को भी विभाजित करने में भी मैं समर्थ रहता हूं। इसके अतिरिक्त एक तथ्य और भी उजागर करता हूँ। मेरे गुणांकों व उनके विरोधांकों के अन्तरांकों पर नजर दौड़ाया जाये तो यह पता चलता है कि मैं उन अन्तरांकों को भी विभाजित करने में अपने को समर्थ पाता हूँ।"

अपनी बातों को समाप्त कर श्रीमान नौ बैठ गये। वे पूर्ण आश्वस्त थे कि सत्ता की कुर्सी उन्हीं को मिलेगी। नौ के बैठने के पश्चात् अनन्त महाप्रभु उठकर खड़े हुए और विनम्र भाव से अपनी बातों को कहने लगे —

"मुझे अंक या संख्या की श्रेणी में रखकर सीमित करना मेरे व्यक्तित्व के साथ मजाक करना होगा। मैं निश्चित परिमाण का बोधक नहीं हूं। मैं असीमित परिमाण का काल्पनिक संकेत हूं। किसी भी बड़ी से बड़ी संख्या जिसे व्यक्त करना सम्भव नहीं है, को अनन्त की संख्या से संज्ञा से विभूषित किया जाता है। किसी भी अंक या संख्या को शून्यदेव द्वारा विभाजित करने के प्रयास के फलस्वरूप मेरी परिकल्पना की गयी। मेरे लिए गणितीय संबंध की परिभाषा का कोई महत्व नहीं

है। मुझे परम सत्ता का मालिक समझा जाता है। इसलिए इस प्रदेश की सत्ता पर मुझे आसीन कराया जाना अपनी तौहीन समझूंगा। अत: इस प्रदेशीय सत्ता के लिए मेरे नाम पर विचार करना युक्तिसंगत नहीं होगा।"

सभी प्रतिनिधि उनके इस संक्षिप्त भाषण से बहुत प्रभावित हुए। अनन्त महाप्रभु अपने आसन पर बैठ चुके। अब शून्यदेव जी की बारी थी। सभी प्रतिनिधियों ने उनसे आग्रह किया कि वे अब अपने संबंध में परिचय करायें। शून्यदेव जी अपना आसन से उठकर खड़े हुए तथा उन्होंने समस्त प्रतिनिधियों को नमस्कार किया तथा संबोधित किया—

"मैं एक ऐसा प्रतिनिधि हूं। जिसका अपना कोई भी अस्तित्व नहीं है। इसके बावजूद भी भारतीय दार्शनिकों ने मुझे अंक प्रदेश में प्रतिष्ठित किया है। इसके लिए मैं उनका आभारी हूं। मेरी बनावट में कहीं भी सरलता नहीं दिखती है। लेकिन एक बात ध्यान देने की है मेरी बक्रता एक नियमित रूप से सूत्रबद्ध है। यद्यपि मेरे इस रूप की आकृति को बेबीलोनियन सभ्यता में विकसित किया गया, लेकिन अंकीय प्रतिष्ठा मुझे भारतीयों ने दिलायी है। मेरे साथ मेरा पुत्र भी है, जिसे बिन्दु कहते हैं। हालांकि यह स्थानबोधक है, फिर भी इसकी परिभाषानुसार यह परिमाणबोधक नहीं है। यही विरोधाभाष इसकी विशेषता है। इसने भी इस अंक प्रदेश में उसी प्रकार गणितीय हलचल मचा रखी है, जिस प्रकार कभी मैंने। मैं सभी व्युत्पन्न पूर्णांक संख्या को निरूपित करने में पूर्ण सक्षम हूं, लेकिन हमारे भिन्नात्मक अंशों को निरूपित करने में मानव को परेशानी होती थी। इसके लिए मेरे पुत्र बिन्दु का प्रयोग होने लगा। इसको दशमलव के नाम से पुकारने लगे। मैंने अपनी बातों के बीच इसका परिचय इसलिए दिया, क्योंकि इसके बिना मैं अपनी पूरी बातें आपको नहीं समझा सकता। अब मैं आपको अपने सामर्थ्य से अवगत कराता हूं। मैं किसी भी अंक या संख्या को अपने साथ गुणित कर उसका अस्तित्व ही समाप्त कर देता हूं। मेरे गुणांक सदैव मैं ही होता हूं। हाँ मैं धनात्मक या ऋणात्मक क्रिया को संपादित करने में सक्षम नहीं हूं। किसी अंक या संख्या में मैं जुड़ू या घटूं, इससे उस अंक या संख्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हालांकि मैं किसी भी अंक को विभाजित कर कोई परिमाण व्यक्त नहीं कर सकता हूं, लेकिन उस अनिश्चयात्मक परिमाण को अनन्त महाप्रभु अपना व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। मैं अंकों के व्यक्तित्व को बढ़ा - चढ़ा कर वयक्त करने की पूर्ण सामर्थ्य रखता हूं। पूर्णांकों की दायीं ओर मिलकर उनका परिमाण बढ़ा देता हूं, लेकिन बायीं ओर में प्रभावहीन हूं। अंको के बीच में बैठकर भी मैं संख्या को व्युत्पन्न करने में समर्थ हूं। पूर्णांक की दायीं ओर दशमलव व किसी अंक के बीच मेरी प्रतिष्ठा बनी रहती है, लेकिन दशमलव के बाद दूरस्थ अंक के दायी ओर मेरा कोई महत्व नहीं है। कहने का मतलब यह है कि संख्या के पूर्णांश में दायीं ओर तथा भिन्नांश में बायीं ओर अपना प्रभाव डालने में मैं सर्वथा सक्षम हूं। जब मैं किसी भी संख्या पर घातीय प्रभाव डालता हूं, तो उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है और जो परिमाण शेष बचता है, वह और कोई नहीं बल्कि एक है।" चारों ओर देखते हुए शून्यदेव ने अपनी बातों को आगे बढ़ाते हुये कहा—

'यद्यपि मैं अस्तित्वहीन हूं, परिमाणरहित हूं, फिर भी मेरे बिना इस प्रदेश की गणितीय गतिविधियां रुक जायेंगी, मानवीय सभ्यताओं का विकास ठप्प हो जायेगा। आप सभी प्रतिनिधि महत्वहीन हो जायेंगे। मैं आप सभी से पूछना चाहता हूं कि है कोई यहाँ, जो मेरे बिना गणितीय गतिविधियों को चालू रखने में समर्थ है।'

इस बात पर सभी प्रतिनिधि शर्म से नीचे देखने लगे और दशमलव उछल-उछल कर कूदने लगा और ताली पीटने लगा। शून्यदेव ने अपने दशमलव को डांटते हुए कहा, — "तुम चंचल मत बनो, अपने में गम्भीरता लाओं।" यहाँ सभीका अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर करता है। प्रश्न यह नहीं है कि कौन किस पर निर्भर है, बल्कि प्रश्न यह है कि हम सभी को एक सूत्र में रखने की क्षमता किसमें है?"

इतना कहकर शून्यदेव बैठ गये। सभी

प्रतिनिधि आपस में बुदबुदाने लगे। अंतत: महाप्रभु ने उठ कर निर्णायक के रूप में अपना निष्कर्ष रखा—

शून्यदेव के अतिरिक्त हम सभी परिमाणबोधक हैं फिर भी हम सभी में उतनी क्षमता नहीं है, जितनी कि शून्यदेव में। अत: मेरा तो फैसला यही है कि हम सब सर्वसम्मति से शून्यदेव को ही सत्ता सम्हालने का कार्य सौंप दें।

सभी ने हर्षध्वनि के साथ इस बात का समर्थन किया ।

शून्यदेव ने अपने आसन से उठे तथा सभी के प्रति आभार व्यक्त करते हुए संबोधन किया —— "हालांकि मैं लौकिक रूप से तो इस कुर्सी पर आसीन नहीं रहूंगा, लेकिन आप सभी की सहायता के बदौलत अलौकिक रूप से इस प्रदेश को सदैव गरिमा प्रदान करता रहूंगा।"

चारों ओर शून्यदेव जी की जय-जयकार होने लगी ।

◆◆◆

2. क्या रस्सी को इतना खींचा जा सकता है ?

श्याम लाल धीमान, प्रवक्ता भौतिकी,
द्वारा डॉ. बी. एस. रावत,
राजकीय चिकित्सालय के पीछे,
कोटद्वार (गढ़वाल) — 24619

कभी - कभी दैनिक जीवन में ऐसी भी परिघटनायें देखने में आती हैं, जो बिल्कुल संभव प्रतीत होती हैं। परन्तु वास्तव में वे संभव नहीं होती। एक ऐसा ही उदाहरण है भारवाहित रस्सी जिसे क्षैतिज दिशा में खींचा जा रहा है। क्या ऐसी रस्सी को खींचकर क्षैतिज दिशा में ताना जा सकता है ? मान लीजिये रस्सी काफी मजबूत है और वह एक बड़ा क्षैतिज बल सहन करने की क्षमता रखती है।

परिघटना की संभाव्यता अथवा असंभाव्यता हमें बलों के संतुलन द्वारा पता चलती है। चित्र में भारवाहित रस्सी को धिरनियों द्वारा बल की दिशा बदलकर क्षैतिज दिशा में खींचा हुआ दिखाया गया हैं । मान लीजिये भार रस्सी के बीचोंबीच बँधा है। इस दशा में यदि हम तनाव बल T को ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज दिशा में वियोजित (रिजोल्व) करें तो हमें क्रमश: T cosθ व T sinθ बल प्राप्त होंगे। चूंकि तनाव बल T दो हैं — एक रस्सी के दायें भाग में तथा दूसरा बायें भाग में, अत: ऊर्ध्व दिशा में परिणामी बल (T cosθ + T cosθ) तथा क्षैतिज दिशा में शून्य होगा (T sinθ - T sinθ =o)। संतुलन की दशा में ऊर्ध्वाधर बल 2 Tcosθ भार mg के बराबर होना आवश्यक है। इस प्रकार, चाहे कोण θ का मान कितना भी हो सदैव 2Tcosθ = mg होगा।

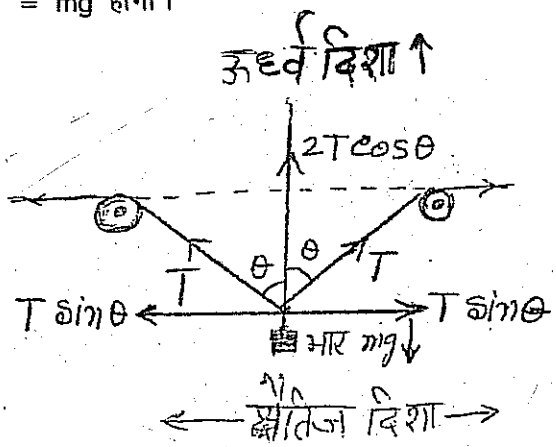

अब प्रश्न है कि क्या उपरोक्त प्रकार से रस्सी को क्षैतिज दिशा में लाया जा सकता है ? नहीं, ऐसी दशा में रस्सी ऊर्ध्वाधर से 90^0 का कोण बनायेगी। उस समय क्षैतिज बल T sin90 अर्थात T होगा। यह बल भार पर दायीं ओर लगेगा। इतना ही बल बायीं ओर भी लगेगा। क्षैतिज बल तो संतुलन में आ गये। परन्तु ऊर्ध्वाधर दिशा में T का घटक T cos90 अर्थात शून्य होगा। इस प्रकार,चूंकि भार mg को संतुलित करने के लिए ऊर्ध्व दिशा में कोई बल नहीं है, अत: हम चाहे रस्सी को कितना भी खींचे अर्थात T बल का मान कितना भी अधिक क्यों न कर लें, रस्सी को क्षैतिज दशा में नहीं लाया जा सकता। ◆◆◆

3. क्या धातुओं की विशिष्ट ऊष्मा स्थिर होती है ?

विशिष्ट ऊष्मा से हमारा अभिप्राय उस ऊष्मा से होता है जो किसी वस्तु के एक ग्राम पदार्थ के ताप में 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि कर दे। परन्तु विशिष्ट ऊष्मा की यह परिभाषा पर्याप्त नहीं है और यह केवल सामान्य परिस्थितियों में लागू हो सकती है। प्राय: पाठ्य पुस्तकों में ठोसों एवं द्रवों के लिए विशिष्ट ऊष्मा के मान सामान्य ताप एवं दाब पर दिये होते हैं। गैसों के लिए तो विशिष्ट ऊष्मा का मान स्थिर दाब एवं स्थिर आयतन पर अलग - अलग दिया जाता है। पाठ्य पुस्तकों में बताया जाता है कि स्थिर दाब पर गैसों की विशिष्ट ऊष्मा स्थिर आयतन पर विशिष्ट ऊष्मा से अधिक होती है और स्थिर दाब पर विशिष्ट ऊष्मा स्थिर आयतन पर विशिष्ट ऊष्मा से प्रति ग्राम अणु गैस स्थिरांक के बराबर अधिक होती हैं। यहां हम यह सिद्ध करेंगे कि धातुओं की विशिष्ट ऊष्मायें भी परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

चित्र में धातु (आयरन) के दो समान गोले लिये गये हैं (दोनों का आयतन एवं घनत्व समान है)। एक गोले को किसी अचालक सतह पर रखा गया है जबकि दूसरे गोले को एक कुचालक जंजीर द्वारा लटकाया जाता है। दोनों गोलों के प्रारम्भिक ताप समान कर लिये जाते हैं। अब दोनों गोलों के ताप में एक - एक डिग्री सेल्सियास की वृद्धि की जाती है। अब प्रश्न है कि क्या दोनों स्थितियों में गोलों को समान ऊष्मायें प्रदान की जाती है।

इसका उत्तर है, नहीं। क्योंकि प्रथम गोला जो सतह पर रखा है, ऊष्मा प्राप्त करने के पश्चात फैलेगा और इस प्रकार, गोले के प्रसार करने से उसका द्रव्यमान केन्द्र कुछ ऊपर उठ जायेगा। इसका अर्थ हुआ कि गोले को दी गयी ऊष्मा केवल उसका ताप ही नहीं बढ़ाती बल्कि उसकी स्थितिज ऊर्जा (mgh) में भी वृद्धि करती है। इसके विपरीत द्वितीय गोले को दी गयी ऊष्मा सापेक्षिक रुप से कम होगी । क्योंकि ऊष्मा पाकर द्वितीय गोले का द्रव्यमान केन्द्र कुछ नीचा हो जाता है, अत: स्थितिज ऊर्जा mgh के बराबर हमें कार्य प्राप्त होता है। यहां h, ऊष्मा प्राप्त करने के पहले एवं बाद की स्थितियों में द्वितीय गोले के द्रव्यमान केन्द्रों के बीच ऊर्ध्वाधर दूरी है। इस प्रकार, स्पष्ट है कि द्वितीय गोले को दी गयी ऊष्मा पहले गोले के सापेक्ष कम होगी। चूंकि (ली गयी या) दी गयी ऊष्मा, (द्रव्यमान x विशिष्ट ऊष्मा x तापान्तर) के बराबर होती है, अत: द्वितीय गोले के लिए विशिष्ट ऊष्मा का मान कम होगा।

इस प्रकार, एक ही पदार्थ के लिए विशिष्ट ऊष्मा परिस्थिति अनुसार भिन्न - भिन्न हो सकती है। गैसों के लिए तो विशिष्ट ऊष्मा का मान - ∞ व + ∞ के बीच कुछ भी हो सकता है।

◆◆◆

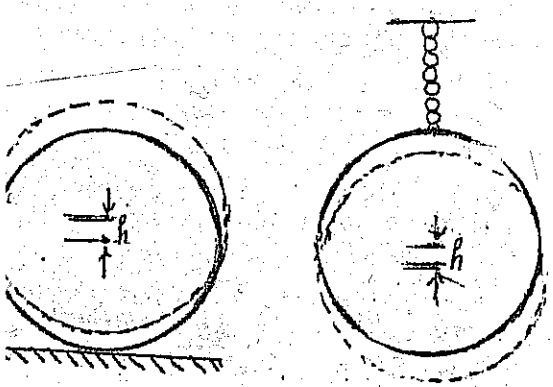

चित्र–रखे हुए गोले (प्रथम स्थिति) के लिए विशिष्ट ऊष्मा का मान लटके हुए गोले के सापेत्र अधिक होता

अतितरलता

यह पदार्थ का वह गुण है जिस पर श्यानता (विस्कोसिटी) एक दम शून्य हो जाती है। यह गुण हीलियम में 2.19^0k से कम ताप पर प्रदर्शित होती है। इस अवस्था में हीलियम की ऊष्मीय चालकता कॉपर के मुकाबले लगभग 1000 गुना अधिक हो जाती है। अतितरलता का यह अनोखा व्यवहार मुख पृष्ठ पर प्रदर्शित है।

— गो. प्र. को.

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केन्द्र से :

1. टी एवं क्रास जोड़ों की निर्माण तकनीक

भा. प. अ. केन्द्र के तकनीकी हस्तांतरण प्रभाग (टी. टी.जी.) ने जुलाई 5,1994 को मद्रास के मै. डायनाथर्म एलौएज प्रा. लि. को. 'निर्वात पाइप लाइनों की नलिकाओं में टी/ब्रांच के जोड़ निर्माण करने की उत्तम विधि' की तकनीक हस्तांतरित की। तकनीकी भौतिकी व प्रारूप इंजीनियरी प्रभाग ने इस आधुनिकतम तकनीक का विकास किया है।अति उच्च निर्वात की प्लबिंग में प्राय: स्टेनलेस स्टील की नलिकाओं का उपयोग होता है। उनमें कई जगहों पर T एवं + आकार के जोड़ लगाने पड़ते हैं। इस विशिष्ट विधि द्वारा वेल्डिंग के कई लाभ हैं : इसमें पूर्णत: भेदन निश्चित है, सिरों को तैयार करने की कठिन विधि से मुक्त है, जुड़े हिस्सों का आकृति विरूपण नहीं होता तथा बहाव अवस्था में गुण-वृद्धि (जो कि जोड़ों की अधिक मजबूती और उनमें क्रमश: होने वाले परिवर्तन की वजह से) होती है। साथ ही, लगाये हुए जोड़ देखने में अच्छे लगते हैं।

यह विधि सरल है और इसे अपनाने में एक ही किट काफी है। इस किट में एक चल द्रवीय पंप व सिलंडर, एक बरमा मशीन और ड्रा - टूल्स (draw -tools) तथा फिटर के औजार होते हैं। यह तकनीक काफ़ी अनुकूलनीय (adaptable) है - इसे लघु बैच उत्पादन से लेकर अधिक मात्रा उत्पादन मे प्रयुक्त किया सकता है। इसे कार्य - स्थल पर अपनाया जा सकता है।

इस विधि से बनाये गये प्रोजेक्शन (बहिर्विष्ट) मानक व्यास वाली नलिकाओं से (जिनका व्यास 25 से 100 मिमी के बीच होता है) जोड़ने के लिए उपयुक्त हैं। इन नलिकाओं की दिवारों की मोटाई 0.8 से 3.2 मिमी तक हो सकती है। प्रोजेक्शनों की दिवारों की मोटाई में कमी और उनमें परिवर्तन, प्रोजक्शनों की लम्बाई व नलिकाओं की मोटाई पर निर्भर करता है। उदाहरणत: यदि मुख्य नलिका का व्यास -निकाली गई नलिका के व्यास के बराबर है और प्रोजेक्शन की लम्बाई 10 मि.मी. है तो यह परिवर्तन 15% तक हो सकता है।

♦♦♦

2. विद्युत सेलों में ट्रिटियम का उत्पादन :

इस केन्द्र के केमिकल इंजीनियरिंग प्रभाग, प्रोसेस इन्स्ट्रूमेंट सिस्टमस प्रभाग और न्यूट्रोन भौतिकी प्रभाग में किये गये अलग अलग प्रयोगों यह पाया गया कि जब लिथियम या पोटेशियम कार्बोनेट के हल्के जलीय घोल का, निकिल घनाग्र और प्लेटिनम ऋणाग्र के रूप में उपयोग कर, विद्युत विच्छेदन किया जाता है तो ट्रिटियम बनता है। सेल से प्राप्त क्षारीय घोल में, रसायनिकी संदीप्ति (luminescence) के प्रभावों को हटाने हेतु उसका सूक्ष्म आसवन किया गया तब उसमें जनित ट्रिटियम का मापन द्रव प्रस्फुरण गणित्र की (scintillation counting) मानक विधि द्वारा किया गया। हल्के जल के विद्युत सेलों में ट्रिटियम उत्पन्न होने की संसूचना मिलने का यह प्रथम अवसर था। 'शीतल संलयन' (कोल्ड फ्यूजन) नाम से प्रचारित, घटना को समझने के विश्व भर में हो रहे प्रयासें के परिप्रेक्ष्य में यह एक महत्वपूर्ण खोज है।

दो दर्जन से अधिक निकिल और प्लेटिनम के विद्युताग्रों से, युक्त विद्युत सेलों को, जिनमें क्षारीय (लिथियम या सोडियम या पोटेशियम) कार्बोनेट का हल्का जलीय घोल था, मुख्यत: 'असंगत अधिक ताप उत्पादन' के संसूचन हेतु परिचलित किया गया था। लगभग एक माह तक, निम्न विद्युत धारा (कुछ सौ मिली एम्पियर से भी कम) पर परिचालित करने के बाद, विद्युत सेलों के घोल का विश्लेषण करने पर, कई सेलों में ट्रिटियम की मात्रा-विद्युत विघटन पूर्व या पृष्ठ भूमि की मात्रा की तुलना में अधिक पायी गयी। यह एक अप्रत्याशित व चौंकाने वाली खोज थी।'ट्रिटियम के विद्युत अपघटनी समृद्धि-करण' द्वारा इसको नहीं समझा जा सकता, क्योंकि विद्युत अपघटनी जल की मात्रा- आसवित हल्के

जल को लगातार डालकर निश्चित रखी जाती थी।

सेल में ट्रिटियम - सक्रियता में समयानुसार होने वाले परिवर्तनों को समझने हेतु तीन सेलों से, विद्युत अपघटनी जल के नमूने कुछ दिवसीय अंतराल पर निकाल कर विश्लेषित किये गये। एक सेल में, जिसमें Li^6 समृद्धित लिथियम कार्बोनेट हल्के जल में घुला था और जिसे अंतरायिक डी. सी. या स्पंदित - वोल्टता से चलाया गया था, ट्रिटियम की मात्रा लगातार एक दिष्ट रूप से बढ़ती हुई पायी गयी। महीने के अंत में अधिकतम मात्रा (220Bq/ml) थी। शीतल फ्यूजन की तृतीय अंतर्राष्ट्रीय काँग्रेस में, जो कि नागोया (जापान) में अक्टूबर- 1992 में हुई थी, इन परिणामों की घोषणा ने काफ़ी अंतर्राष्ट्रीय उत्सुकता उत्पन्न की थी।

इन परिणामों की पुष्टि करने के लिए 23नये सेलों का परिचालन किया गया । इनमें से 10 सेलों में ट्रिटियम - उत्पादन पाया गया।इन प्रयोगों में ट्रिटियम की मात्रा 4.8 Bq/ml से कम भी। एक उत्सुकता जगाने वाला निरीक्षण : कुछ सेलों के इलेक्ट्रोलाइट घोलों में परिचालन समयानुसार ट्रिटियम की मात्रा में परिवर्तन दोलनी या आरादंती था।

इन परिणामों की घोषणा, दिसंबर - 1993 को, शीतल-फ्यूजन की चतुर्थ अंतर्राष्ट्रीय कांफ्रेस में जो कि माउली (हवाई) में हुई, की गई थी। इसी कांफ्रेस में, होकारडो यूनिवर्सिटी (जापान) की एक टीम ने भी अपने सेलों में ट्रिटियम उत्पन्न होने की पुष्टि की। उनके हल्के जल के सेलों में, जोकि 0.5 एम्पियर धारा पर परिचालित थे, उत्पादन दर 3Bq/20ml प्रति दिन थी।

♦♦♦

3. वातावरण - अध्ययन में प्लूटोनियम :

पिछले कुछ वर्षों से वैज्ञानिक, प्राणियों और वातावरण पर होने वाले प्लूटोनियम के हानिकारक प्रभावों के मूल्यांकन हेतु प्रयत्नशील हैं। उस के लिए प्लूटोनियम तत्व के ऐसे आइसोटोप की आवश्यकता है जिसकी अर्धायु (उसके अन्य आइसोटोपों की तुलना में) तो कम हो पर उससे विकिरित अल्फा कणों की ऊर्जा इतनी हो कि उसका संसूचन व आकलन किया जा सके; साथ ही वह आइसोटोप नाभिकीय रिएक्टरों में बनने वाले प्लूटोनियम में न हो। दो कम अर्धायु वाले प्लूटोनियम के आइसोटोपे; Pu-236 व pu-237 में से pu-236आपनी 2.85वर्ष की अर्धायु और 5.768 MeV ऊर्जा के अल्फा - कणों की वजह से रेडियो सक्रिय ट्रेसर अध्ययन हेतु ज्यादा उपयुक्त है।

रेडियो -रसायनिकी विभाग ने Pu-236 को अल्प - मात्रा में बनाने के लिए एक विधि विकसित की है। परिवर्ती ऊर्जा साइक्लोट्रोन केंद्र, कलकत्ता में यूरेनियम - 235 के लक्ष्यों पर अल्फा कणों को किरणित कर Pu-236 का उत्पादन किया। जनित Pu-236 को रेडियो रसायनिकी विधि से अलग विलायक निष्कर्षण विधियों द्वारा अन्य कई विखंडन - उत्पादों व अभिक्रिया उत्पादों से मुक्त किया गया। भा. प. अ. कें. में उत्पादित Pu - 236 ट्रेसर के उपयोग से - वातावण में प्लूटोनियम प्रसरण प्रक्रिया के अध्ययन में सहायता मिलेगी।

प्रस्तुति : **डॉ कैलाश चन्द्र भल्ला**
रसायनिकी प्रभाग, भा.प.अ. केन्द्र,
बंबई - 400 085.

♦♦♦

अन्यः

1. फ्यूजन रिएक्शन की दिशा में नयी खोज

अमेरिका के प्रिंस्टन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने विश्व की सबसे शक्तिशाली नियंत्रित संलयन अभिक्रिया — 'फ्यूजन रिएक्शन' में सफलता प्राप्त की है। इससे एक न एक दिन ऊर्जा के अक्षय एवं प्रदूषणरहित भंडार के दोहन की आशाएं बढ़ गयी हैं।

प्रिंस्टन प्लाज्मा भौतिकी प्रयोगशाला में हाइड्रोजन रियेक्टर में संबंधित प्रयोग में सफलता मिली है। प्रयोगशाला के निदेशक रोनाल्ड सी. डेविसन के अनुसार यह संलयन ऊर्जा विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस प्रयोगशाला को वित्तीय सहायता अमेरिका के ऊर्जा विभाग द्वारा प्राप्त हो रही है।

संलयन क्रिया में हाइड्रोजन जैसे हल्के परमाणु आपस में मिलते हैं और उस प्रक्रिया में बहुत अधिक ऊर्जा निकलती है। ज्ञात हो कि सूर्य से इसी प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा निकलती है। दूसरे शब्दों में सूर्य की अनंत ऊष्मा का रहस्य है उसमें होने वाली संलयन क्रिया। संलयन परमाणु विखंडन के विपरीत क्रिया है। विखंडन में यूरेनियम जैसे भारी अणु विखंडित होते हैं और ऊर्जा निकलती है। परमाणु रिएक्टरों तथा परमाणु बम में यह क्रिया होती है।

प्रिंस्टन रिएक्टर में संलयन क्रिया से करीब 30 लाख वाट विद्युत के बराबर ऊर्जा पैदा हुई जो इंग्लैण्ड में ऑक्सफोर्ड के निकट स्थित रिएक्टर से दो वर्ष पूर्व पैदा हुई; किंतु यह अनुपात पिछले प्रयोगों की तुलना में काफी सुधार को दर्शाता है।

भौतिकविदों का मानना है कि यदि उच्च शक्तिवाले प्रयोगों की चालू शृंखला सफल रहती है तथा दो अन्य अत्याधुनिक प्रायोगिक संलयन रिएक्टर तैयार हो जाते हैं, तो पहला व्यावसायिक संलयन रिएक्टर सन 2035 के आसपास काम करना शुरू कर देगा।

यहां पर एक दिलचस्प बात यह है कि प्रिंस्टन रिएक्टर में ईंधन के रूप में ड्यूटेरियम तथा ट्रिटियम के मिश्रण का प्रयोग किया जा रहा है जबकि पहले के प्रयोगों में सिर्फ ड्यूटेरियम का इस्तेमाल हुआ है।

प्रस्तुति : **डॉ. सीताराम सिंह पंकज**
विभागाध्यक्ष, जंतुविज्ञान विभाग
के. एस. आर. कॉलेज, सराय, रंजन,
समस्तीपुर - 848 127

♦♦♦

2. विश्व का विशालतम पेड़

विश्व का विशालतम पेड़ प्रमुखतः पश्चिम अफ्रीका में पाया जाता हैं। इस पेड़ का नाम है 'बेओबैब'।

'बेओबैब' अफ्रीका का कल्पवृक्ष कहलाता है। यह पेड़ जल और भोजन भी देता है। और रहने के लिए आवास भी प्रदान करता है।

कई प्रकार के प्राणी इस पेड़ से आकृष्ट होकर इसके समीप अपना बसेरा कर लेते हैं। यह उनका सम्यक भरण - पोषण करता हैं। इन प्राणियों में पक्षी, कीट, तथा अन्य छोटे प्राणी भी शामिल हैं। यही कारण है कि इसे संजीवन अथवा जीवन दायक पेड भी कहा जाता है।

इस पेड़ का तना इतना नरम होता है कि कई पक्षी समूह अपनी चोंचों के आघात से इनमें छेद बना लेते हैं और उनमें घोंसलों तक का निर्माण कर लेते हैं। इस पेड़ को उल्टा पेड़ अथवा अश्वश्य भी कहते हैं क्योंकि देखने में लगता है कि इस पेड़ की जड़ें ऊपर आकाश में हैं और छोटी शाखाएँ तथा पत्ते जमीन के नीचे। ऐसा इसलिए होता है कि वर्ष में अधिकांश समय इस पेड़ की शाखाओं में कोई पत्ते नहीं होते जिससे ये शाखाएँ आकाश में उठी हुई जड़ें ही प्रतीत होती हैं। कई पेड़ देखने में ऐसी विशाल बोतलों के समान लगते हैं जिनसे लकड़ियाँ बाहर निकल रही हों।यदि 'बेओबैब' को काटा या गिराया न जाय तो यह सैंकड़ो वर्ष तक जीवित रह सकता है।

सन 1858 में डॉ. डेविड लिविंग्स्टन ने मौजाम्बीक के एक बेओबैब पेड़ पर अपना नाम खोदा था जो आज भी देखा जा सकता है। दक्षिण अफ्रीका का एक बेओबैब पेड़ संभवतः एक हजार वर्ष से भी अधिक पुराना है।

भारत में भी हैदराबाद के पास गोलकुण्डा के किले में सात सौ वर्ष से भी अधिक पुराना बेओबैब का पेड़ है। मान्यता है कि इस पेड़ को सुल्तान के नीग्रों अंगरक्षक अपने साथ अफ्रीका से लाये थे।

95 फीट घेरावाले पेड़ के अन्दर 27 व्यक्ति एक साथ निवास कर सकते हैं इसके अन्दर का खोखला भाग 36 वर्ग फीट है। निस्सन्देह यह पेड़ भारत का सबसे बड़ा पेड़ है। बेओबैब का पेड़

आंध्र प्रदेश, पाण्डिचेरी, गोवा, दमन, मध्य प्रदेश में कहीं - कहीं देखने को मिल जाता हैं।

प्रस्तुति — **शाह आलम सिद्दीकी**
रेस्ट रेलवे कॉलोनी
गोरखपुर—273 012 (उ. प्र.)

3. कीटों में छुपे मेहमान - कीट - नियंत्रण के लिए वरदान

कीड़ों की कोशिकाओं के अंदर ऐसे छुपे हुए सूक्ष्मजीवियों की जानकारी धीरे धीरे स्पष्ट हो रही हैं और कीड़ों की प्रजनन क्षमता को नष्ट करने के विशेषज्ञ होते हैं। कीट-नियंत्रण में इस तथ्य की असीमित संभावनाएं हों सकती हैं। फसलों को खानेवाले कीडों से लेकर भयानक यलो-फीवर वाली शी शी मक्खी तक में ये पाये जाते हैं। रोचेस्टर युनिवर्सिटी के डा. वारेन के अनुसार अनेकों अनेक कीड़ों में इन्हें पाया जा रहा है। सबसे चौंकाने वाली और महत्त्वपूर्ण बात ये है कि कुछ ही प्रकार के बैक्टीरिया इतनी बड़ी संख्या में अनेक कीड़ों में पाये जा रहे हैं। परंतु अभी तक प्रयोगशाला में, असंक्रमित कीड़ों पर इनका संक्रमण नहीं किया जा सका है। अनेक प्रयोगशालाओं में इस पर शोध चल रहा है।

◆◆◆

1. नई धमनियां उगाएं

धमनियों के अवरोध से रक्त-संचार में बाधा उत्पन्न हो जाती है। जिन भागों को ये धमनियां रक्त पहुंचाती हैं, उन्हें पर्याप्त रक्त न मिल पाने से वे निष्क्रिय होने लगती हैं और कालांतर में वह अंग मृत हो सकता है।अभी 'बाई-पास' की तकनीक से उपचार किया जाता है। अमेरिका में डी एन ए सलाहकार समिति द्वारा अनुमोदित एक प्रस्ताव के अनुसार पैर की कोशिकाओं में ऐसे जीन का समावेश करने का प्रयत्न किया जायेगा जो अवरुद्ध धमनी के आसपास नई धमनियां बनाकर रक्त संचार सामान्य कर दे। इस तरह 'जीन-उपचार' की नूत्याधुनिक पद्धति की शुरुआत होने वाली है। इस उपचार की सफलता, भविष्य में हृदय एवं अन्य धमनी रोगों के उपचार में एक नई दिशा दिखा सकती है।

प्रस्तुति : **डॉ. दुर्गाप्रसाद पांडेय**
नाभिकीय कृषि प्रभाग
भा. प. अ. केंद्र, बम्बई-400 085.

विज्ञान कविता

तारों का जन्म

यह अनन्त आकाश भरा था
तत्व कणों और हाइड्रोजन से
घूम रहे थे ये सब कण
महाशून्य में द्रुत गति से
कहीं कहीं कुछ कण जब आकर
एक जगह मिल जाते
गुरुत्वीय बल बढ़ जाने से
कण पुंज जमा हो जाते थे
कणराशि जमा हो जाने की
प्रक्रिया तेज होती जाती
अधिक अधिक कण जुटने लगते
यूँ ढेर जमा हो जाते थे
अधिक दाब बढ़ जाने पर
अन्दर के कण अकुलाते थे
इधर उधर टकराने से
कुछ अधिक गरम हो जाते थे
भीतर के कण गर्म होते
ऊपर से दाब भी बढ़ता था
कण-समूह संकुचित होकर
कुछ घनीभूत हो जाता था
ताप दाब दोनों बढ़ने पर
एक दिशा तब आती थी
छोटे तत्त्वकणों का
संचयन शुरू हो जाता था
इस संचयन के फलस्वरूप
उर्जा होती थी निर्वासित
कुछ उर्जा ताप बढ़ाती थी
बाकी हो जाती थी विकरित
अपनी भूपर जैसें हरदम
जन्म हो रहा मानव का
सृजन हो रहा हरपल
इस महा शून्य में तारों का
बस ये ही पिण्ड शोले जैसे
दिनरात चमकते रहते हैं
सूरज भी बस इक तारा है
सब तारे सूरज जैसे हैं

– डॉ. जयप्रकाश चर्तुवेदी, एवं विद्यामणि शुक्ल.

संकलन

पिछले अंकों की अनुक्रमणिका (गतांक से आगे)

जनवरी - मार्च 1990 **22(1)**

संपादकीय 3

प्रवेशीय वार्ता 5

लेसर - एक परिचय 7
— जगदीश चन्द्र मोंगा

लेसर क्षेत्र में आधुनिक विकास 11
— टी. पी. एस. नाथन

लेसर स्पेक्ट्रोस्कोपी 16
— ग. ल. भाले

परमाण्विक भौतिकी में लेसर का महत्व 21
— भूषण लाल

रसायन विज्ञान और लेसर 28
—अविनाश सप्रे एवं जयपाल मित्तल

लेसर द्वारा संलयन 32
— ललिता धारेश्वर

आयुर्विज्ञान एवं शल्यचिकित्सा में लेसर का योगदान 36
— ल. मो. कुक्करेजा

लेसर सुदूर संवेदन 39
— देब कु. घोष

लेसर का पदार्थ-संसाधन में उपयोग 41
— ज्ञा. ला. गोस्वामी एवं दि. कुमार

संचार में लेसर 47
— उ. च. भारतीय, सु. ल. मक्कड़ एवं र. च. खट्टर

अन्य लेख :

आण्विक ताण्डव 52
— दीपक कुलकर्णी

टिप्पणियां :

जैवरसायनिकी में मोलिब्डिनम 58
— इन्द्रजीत कुमार

बन आयी है तितलियों की जान पर 60
— सतीश कुमार शर्मा

स्तंभ :

विज्ञान कविता 46

कुछ फूल कुछ कांटे 51

बाल विज्ञान 61

संगोष्ठी समाचार 62

पुस्तक समीक्षा 64

अप्रैल-जून 1990 **22(2)**

संपादकीय 3

द्वितीय श्रेणी काष्ठ का भंडारण, परिरक्षण 4
— प्रेम बल्लभ डोबरियाल

वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत 13
— राजेन्द्र कुमार राय

शीत संलयन - एक संभावना 19
— गोपाल कृष्ण रंजन

मृत्यु की रसायनिकी 23
— डॉ. एम. अली

भारतीय नदियों में भू-अपरदन 30
— किरण द्विवेदी

विचार विज्ञान 33
— बलवीर तलवाड़

बैटरी - क्षेत्र के नये क्षितिज 37
— के. एम. जैन

उत्परिवर्तन एवं गुणसूत्र 41
— हीरामणि जुगरान एवं एस. के. दत्त

ब्रह्मांड की उत्पत्ति के सोपान 45
— निलेश ह. वायडा

टिप्पणियां :

समलत दर्पणों के प्रतिबिंबों में पार्श्व-परिवर्तन 48
— बाल गोविंद जायसवाल

ोम के कीट नाशक प्रभाव 49
· के के पालीवाल

तंभ :

जिज्ञासा

बाल विज्ञान

क्या आप मानेंगे ?

कुछ फूल कुछ कांटे

ुलाई - सितम्बर 1990 22(3)

पादकीय 2

ाख

कुरमुत्ता (मशरुम) 4
· सविता गुप्ता

ोवियत यान "मीर" 9
· डॉ. वासुदेव प्रसाद यादव

कों से संचालित यंत्र और उनके अनुप्रयोग 12
ना. सुंदरेशा

प्रजय में फ्लोराइड के दुष्प्रभाव 14
डॉ. डी. डी. ओझा

रज का समुद्र से रिश्ता 19
के एल. कोटनाला एवं एम. सी. पाठक

क्षुदान 22
सोती विरेन्द्र चन्द्र

ाड़ते आवास - बढ़ता प्राणी विलोपन 25
सतीश कुमार शर्मा

ाप्पणियां :

ेलिकन का विकल्प 28
सुधांशु पन्त

े में भी मक्का उगाएँ 28
के के पालिवाल

ंभ :

नोत्तरी 31

ल विज्ञान 31

पुस्तक समीक्षा 33

कुछ फूल कुछ कांटे 33

संगोष्ठी समाचार 35

क्या आप जानते हैं ? 36

अक्तूबर - दिसंबर 1990 22(4)

प्रस्तावना 3

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद: एक परिचय 5
— डॉ. गो. प्र. कोठियाल

उद्घाटन भाषण 10
— डॉ. पी. के अय्यंगार

नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में भारतीय अनुभव एवं उपलब्धियां 12
— एस. एल. काटी

नाभिकीय ऊर्जा और परमाणु बिजलीघर 18
— अनिल काकोडकर

नाभिकीय बिजलीघरों की अभिकल्पन विशेषताएं 26
— एस. एस. बजाज

नाभिकीय पदार्थ 31
— प्रदीप रंजन राय

भारत के नाभिकीय कार्यक्रम में भारी पानी का महत्व एवं इसका उत्पादन 38
— सु. शर्मा, एवं स्वं. प्र. श्रीवास्तव

अनुसंधान रिएक्टर 46
— सु. कु. शर्मा

भारत का परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम व राजस्थान परमाणु बिजलीघर प्रचालन का अनुभव 47
— जी. वी. नाडकर्णी

न्यूट्रान पुंज अनुसंधान 49
— डॉ. बी. ए. दासण्णाचार्य

नाभिकीय विद्युत परियोजनाओं में स्वास्थ्य व सुरक्षा के उपाय 51
— सु. द्वा. सोमण, एवं डॉ. चिं. म. सूँठा

नाभिकीय ऊर्जा एवं पर्यावरण 57
—डॉ. उमेश चन्द्र मिश्र

नरोरा परमाणु बिजलीघर के सुरक्षा पहलू और इसकी आपात योजना 62
— ए. एम. देसनवी

यूरेनियम-उत्पादन और इस्तेमाल 65
— महेन्द्र कुमार बतरा

नाभिकीय रिएक्टर के रासायनिक पहलू 69
— डॉ. दीनदयाल सूद

जनवरी - मार्च 1991 23 (1)

संपादकीय 3

लेख

रंगीन खाद्य पदार्थ एवं हमारा स्वास्थ्य 4
— रामलखन सिंह एवं डी. पी. मिश्र

कृत्रिम रूप से अधिमिश्रित संरचनाएँ : अर्द्ध धातु तकनीक में नये आयाम 7
— डॉ. गोविन्द प्रसाद कोठियाल

मानव जीवन में घासें 12
— डॉ. राजकिशोर एवं डॉ. सुरेश सिंह

द्वयलव गणित क्या है? 15
— श्याम लाल धीमान

चयापचयन प्रक्रिया का एक रूप 18
— ओम प्रकाश खंडेलवाल

ऊतक संवर्धन के कुछ अनुप्रयोग 20
—अखिलेश कुमार तिवारी

कवक विशलुताएं : अनंत खतरे 22
— डॉ. रमेश सोमवंशी

संगीत : एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण 26
— सुधांशु पंत एवं राजेश कुमार

खाद्य पदार्थों में मिलावट 29
— डॉ. डी. डी. ओझा

मस्कुलर डिस्ट्रोफी : निदान एवं उपचार के नूतन आयाम 33
— डॉ. मदन मोहन बजाज

भयानक और विनाशकारी भूकंप 41
—दयाशंकर पाटिल

रोग फैलाने वाले कुछ कीट 44
— डॉ. ए. के. चोपड़ा

विज्ञान महापुरुष

वायु में पहली उड़ान - मांगल्फिये भाई 47
— (सुश्री) पूनम वार्ष्णेय

विज्ञान कथा

तेल-भक्षी जीवाणु 50
— राजकुमार जैन

टिप्पणियां

गाजर घास : एक जहरीला पौधा 53
पपीता — एक बहुगुणकारी फल 53
भोजन और मस्तिष्क 54
खनिजों की पहचान में पेड़-पौधों का योगदान 56
धेंघा रोग 56
खेजड़ी का संवर्धन 58
मानव और लोहा 58

स्तंभ :

प्रश्नोत्तरी 60
विज्ञान के बढ़ते कदम 62
बाल विज्ञान 63
पुस्तक समीक्षा 66
संगोष्ठी समाचार 67

अप्रैल - जून 1991 23(2)

संपादकीय 3

लेख

धमनी काठिन्य का वास्तविक कारण 5
— डॉ. केशव कुमार

पागल कुत्तों से बचिए 10
— डॉ. रमेश सोमवंशी

कागज एवं लुगदी उद्योग में बाँस 16
— प्रेम वल्लभ डोबरियाल एवं डॉ. सतीश कुमार

समाज और पर्यावरण 22
— डॉ. जुगमेन्द्र उपाध्याय

उच्च तापमान अतिचालकता 27
— राजीव गुप्त

संलयन युक्तियाँ 31
— सुधीर कुमार दीक्षित

अर्द्धचालकों के उपयोग से सौर ऊर्जा 36
— डॉ. के. एम. जैन

मरुस्थल पर वैज्ञानिक अन्वेषण 40
— वासुदेव पालीवाल

कृत्रिम धागे 44
— डॉ. अजय कुमार चतुर्वेदी

तम्बाकू 49
— रणजीव अजमानी

भारत में खनिज एवं खनन विकास 51
— डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

अनुवांशिक अभियांत्रिकी और नवकल्पित मानव 54
— बालकृष्ण काबरा 'एतेश'

सिंट स्कैनर 58
— डॉ. वासुदेव प्रसाद यादव

टेप्पणियां

महिलाओं में कैन्सर से बचाव 61
हृदय का दौरा 61
अनिद्रा में प्याज 61
कृत रोग - निरोधी प्रोटीन 61
जुड़वाँ बच्चे 62
फलदार पौधों में उर्वरक 62
आहार में प्रोटीन 63
दाओं के सुधार हेतु ढेंचा 65
दूर संचार के इतिहास की विशिष्टताएं 67
— डॉ. अरविन्द गुप्ता एवं अल्का गुप्ता

विज्ञान महापुरुष

रसायन के जनक - लैवाइजर 68
विज्ञान कविता 70
नाईलौन का निर्माण 71

जुलाई - सितंबर 1991 23(3)

संपादकीय 3
भारत में विकिरण संरक्षण नीति एवं नियमावली 5
— सुधाकर द्वा. सोमण

विकिरण की अल्प मात्रा के प्रभाव 8
— अ. नागरत्नम्

विकिरण संरक्षण के मापदण्ड -
एक सिंहावलोकन 12
— चिन्तामणि सूँठा

दाबित भारी पानी रिएक्टरों में सुरक्षा
संबंधी उपाय 14
— एम्. एस. आर. शर्मा

चिकित्सा में विकिरण संरक्षण कार्यान्वयन -
अनुभव एवं सुझाव 23
— आर. एन्. एल्. श्रीवास्तव

नाभिकीय अपशिष्ट प्रबंधन 26
— नरेन्द्र कुमार जैन

विकिरण संरक्षण में जनशिक्षा का महत्व 28
— जी. वी. नाडकर्णी

विकिरण संरक्षण एवं मरम्मत में थायोल यौगिकों
का योगदान 29
— मनोहर लाल

सूक्ष्म तरंग विकिरण मापन एवं संरक्षण मापदंड
निर्धारण 31
— जितेन्द्र गुप्त एवं के. एस. वी. नम्बी

स्थापत्य की दृष्टि से सुरक्षित विकिरण कक्ष 33
— मसूद अहमद एवं सुधाकर ज. सुपे

द्रव संदीप्ति द्वारा विकिरण मात्रामिति 37
— आर. के. उम्मन, एस. सेनगुप्ता,

आयोडीन - 131 द्वारा रेडियोसक्रियता मापन की चतुर्थ अन्तर्तुलना 41
— पी. के. श्रीवास्तव, एच. के. साहू और जी. डी. खेड़ा

परमाणु भट्टियों में विकिरण सुरक्षा 44
— विनोद कुमार जैन

दाबित भारी पानी परमाणु बिजलीघरों में विकिरण कार्यपद्धति 46
— एम. आर. सचदेव

कोबाल्ट - 60 से दूर चिकित्सा के विकिरण संरक्षण 49
— सुनील कंठ मिश्र

होगी कितनी प्रभावकारी 52
— मेघ सचदेव

ईंधन पुनर्संसाधन तथा अपशिष्ट पदार्थ संसाधनों में विकिरण संरक्षण 54
— गोपाल शंकर जौहरी

अपशिष्ट नाभिकीय ईंधन - विकिरण संरक्षण 56
— दिलीप भाटिया

सुरक्षा एवं उपयोगिता दृष्टिकोण - एप्रन बनाने में 58
— बी. एम. शाह

संगणकीय रेडियोग्राफी 59
— बुद्धिराम वर्मा

शिशुओं के क्ष-किरण चित्रण में मात्रा कम करने की विधि 64
— एस. के. चतुर्वेदी

प्रदेशीय चिकित्सालयों में विकिरण सुरक्षा के प्रबन्ध 66
— एम. के. गुप्ता, गुलशन राय एवं एच. आर. माली

रेडियोरसायनिकी में प्रशिक्षण और जनशिक्षा 68
— दीनदयाल सूद एवं राजेन्द्र स्वरूप

विकिरण संरक्षण - प्रशिक्षण और जन शिक्षा 69
— रमेशचंद्र एवं सर्वेशचन्द्र कटियार

स्वास्थ्य भौतिकी में प्रशिक्षित जनशक्ति का विकास 71
— स. .पा कथूरिया, ज. स्वरूप एवं कृ. च. पिल्लै

बाल विज्ञान 75
दूर संचार के इतिहास की विशेषताएं 76
परिषद समाचार 77

अक्तूबर - दिसम्बर 1991 23(4)
संपादकीय 3

लेख

बृहस्पति ग्रह 4
— डॉ. वासुदेव प्रसाद यादव

हाइड्रोजन- ऊर्जा का एक वैकल्पित स्रोत 9
—इंद्रजीत कुमार

रोग निरोधी टीकों की खोज 13
— राजेन्द्रकुमार राय

भारतीय उपग्रह कार्यक्रम 18
— डॉ. आनंद कुमार शर्मा

नशीली दवाओं का रसायन शास्त्र और उनका प्रभाव 25
— डॉ. रमेश ज. भायाणी

उच्च रक्त चाप 30
— राजेन्द्रकुमार नायक

रबी की प्रमुख फसलों के रोग एवं उपचार 35
— बीरेन्द्र कुमार सिंह

कोशिका जीव विज्ञान में महत्त्वपूर्ण विकास: पैच क्लैंप विधि 39
— डॉ. के. पी. मिश्र

टिप्पणियां

वैसे हो संपर्क लोकांतर वासियों से — डॉ. अवधेश शर्मा 43

जल कुम्भी: अभिशाप या वरदान — गणेशकुमार पाठक 46

प्रवाल श्रेणियां — अखिलेश्वर तिवारी 48

भूमिसंरक्षण — प्रकाश चंद्र अवस्थी 50

वायु ऊर्जा — कुमार संजीव सिंह 'राकेश' 52

एक कोशीय प्रोटीन — डॉ. पी.डी. माथुर 53

बढ़ता खतरा तेजाबी बरसात का — जगमोहन सिंह रौतेला 55

बाल विज्ञान :

तारों में भी होता है जन्म और होती है मृत्यु — एम. ए. हन्फी 57

हमारी आँखों की बनावट — प्रमोद माथुर 'चित्रांश' 59

संकलन

दूर संचार के इतिहास की विशिष्टताएं — डॉ. अरविंद कुमार गुप्ता एवं श्रीमती अल्का गुप्ता 61

विज्ञान समाचार

बी. ए आर सी. में. 67

अन्य 67

संगोष्ठी समाचार : 68

कुछ फूल कुछ कांटे 71

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता **(1991)** का परिणाम 72

कुछ फूल कुछ कांटे

"वैज्ञानिक" का 26.1 (जनवरी- मार्च 1994) अंक प्राप्त हुआ। यूं तो यह अंक हर दृष्टि से अच्छा लगा परंतु कुछ तकनीकी शब्दोंमें मात्राओं की त्रुटियां यहां वहां रह गयीं। सुझाव के तौर पर यदि प्रकाशन से पूर्व संबंधित लेखकों से प्रूफ रीडिंग हो सके तो शायद ये त्रुटियां नही रहेंगी। इससे पत्रिका का स्तर और भी ऊंचा उठ सकेगा।

11–8–94

डॉ. बृजलाल बिजलवाण
सी. एस. आई. आर. कॉप्लेक्स पालमपुर
पोस्ट बॉक्स–6, पालमपूर 176 061 (हि. प्र.)

(सुझाव के लिए अत्यन्त आभारी हैं, परन्तु तकनीकी कठिनाईयों के कारण प्रत्येक लेख का प्रूफ रीडिंग लेखकों द्वारा करवाना संभव नही है। प्रूफ रीडिंग का काम काफी मेहनत तथा सावधानी से किया जाता है। फिर भी प्रेस में अंतिम शुद्धिकरण के दौरान कुछ न कुछ छूट जाता है, इसका सबसे अधिक खेद हमें होता है — संपादक)

♦ ♦ ♦

कल ही मैने रविशंकर विश्वविद्यालय में "वैज्ञानिक' का 25:4 (अक्तूबर-दिसंबर 1993) अंक देखा। इस पत्रिका से मुझे काफी ज्ञानार्जन हुआ, इसका मैं आभार मानता हूँ। 'वैज्ञानिक' के 22:4 अंक में प्रकाशित 'वैज्ञानिक के विशेषांको' की सूची में से खगोल भौतिकी, हमारी पृथ्वी और ब्रह्मांण्ड, शरीर विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, खगोल विज्ञान और भारतीय विज्ञान की भावी दिशाएं मुझे रोचक लगे। इनके अंको को प्राप्त करना चाहता हूँ।

18–3–94

देवेन्द्र साखरे
331/सी, जोन – 2
भिलाई मार्शलिंग यार्ड
दुर्ग - 490 025 (म. प्र.)

(पत्र में पूछी गयी जानकारी आपको अलग से भेज दी गयी थी। आशा है समय पर प्राप्त हो गयी होगी. अंको में रुचि के लिए धन्यवाद — *संपादक*)

Deshpande
3611

1000
997
1997

3074.32
1997.00
1077.32
3074.32

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रॉबे में स्थापित की गयी है। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियोआइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रुप से विकास किया है एवं देश विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं प्रदत्त सेवाएं इस प्रकार हैं:

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो एस्से) किट्स :**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोरसायन एवं विकिरण स्रोत :**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन :**
  सांचो तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर :**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा :**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई.सैट, वी.कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, रुई, शल्य ब्लेड, दस्ताने, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया, अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :

वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,
विकिरण एवं आइसोटोप प्रोद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)
वि.ना.पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.
टेलीफोन : 555 16 76/555 31 45
तार : ब्रिटएटम, बम्बई-94. टेलेक्स : 11 72212 ब्रिट इन्

इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड

शेरबानू, छटी मंजिल, 111, महर्षि कर्वे रोड,
बंबई - 400 020 (भारत)

फोन : 290 914 -15 टेलेक्स : 011 - 83122

तार : रेअर अर्थ बंबई

: हमारे उत्पादन :

इलमेनाइट
रुटाइल
जरकान
जरकॉन फ्लोर (जिरफ्लोर)
जिरकोनियम ऑक्साइड
जिरकोनियम आक्सीक्लोराइड
गारनेट
सिलिमेनाइट
मोनाजाइट
रेअर अर्थ्स क्लोराइड
रेअर अर्थ्स फ्लोराइड
रेअर अर्थ्स ऑक्साइड एवं साल्टस
सीरियम ऑक्साइड
सीरियम हाइड्रेट
सीरियम कार्बोनेट
ट्राइसोडियम फास्फेट (डोडेकाहाइट्रेड)
समेरियम/इट्रियम/गैडोलिनियम सांद्र

थोरियम/सीरियम नाइट्रेट - थोरियम ऑक्साइड
एवं
कृत्रिम रुटाइल

हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा
डा. शिव प्रकाश गर्ग द्वारा मानस प्रिन्टेटस और एजंसीस, घाटकोपर, बम्बई में मुद्रित व प्रकाशित

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70
दिल्ली, नई दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा/विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

NUCLEAR GRADE MATERIALS FOR COMMERCIAL APPLICATION

The accuracy, quality and reliability of nuclear grade pipes and tubes - in seamless tubes different grades S.S. and alloy steels as per ASTM A 312/213/269, for chemical, nuclear, fertilize petrochemical and power generation industries.

Ultra pure materials - Like Selenium, Antimony, Bismuth, Gallium, Zirconium, $POCl_3$ and other electronic grade materials upto 99.9999 purity.

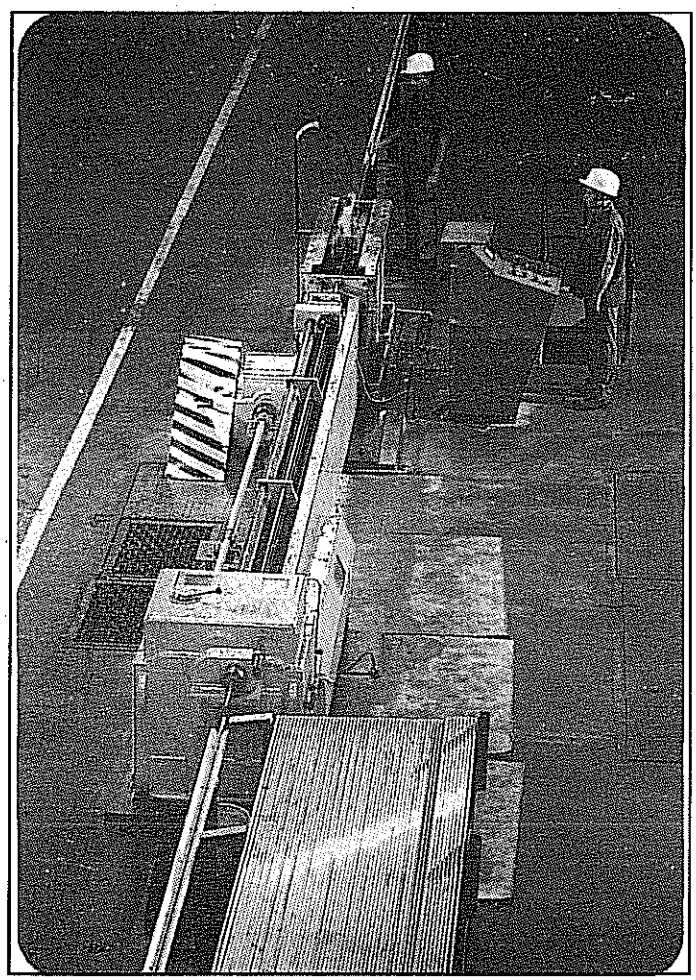

Job Work - For hc extrusion, col palgering an vacuum or hydroge annealing of bearin or carbon steel cupronickel titanium or othe tubes, plasma, Ar melting of specia metals.

The 8-15 cold rolling or pilger mill, built at Nuclear Fuel Complex, available for sale to Indian Industries.

For your special material requirements, please contact...

Marketing Manager

NUCLEAR FUEL COMPLEX

ECIL POST, HYDERABAD - 500 762
Tel. No. 040 - 621239. Fax No. 040 - 621305